BPYC-132

(बीपीवाईसी-132)

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

नीतिशास्त्र

अंतर–विषयक एवं परा–विषयक अध्ययन विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. वी. टी. सेबस्टियन
विजिटिंग प्रोफेसर, जेएनयू
एवं आचार्य (दर्शनशास्त्र),
पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़

डॉ. रूपलेखा खुल्लर
दर्शनशास्त्र विभाग,
जानकी देवी स्मृति
महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. सुद्न्या कुलकर्णी
दर्शनशास्त्र विभाग,
जानकी देवी स्मृति
महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. मीता नाथ
दर्शनशास्त्र विभाग,
रामजस महाविद्यालय,
रामजस महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. अमित कुमार प्रधान,
दर्शनशास्त्र विभाग,
रामजस महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. गरिमा मणि त्रिपाठी
दर्शनशास्त्र विभाग,
माता सुन्दरी महिला
महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. बिन्स सेबस्टियन
दर्शनशास्त्र विभाग,
सेन्ट स्टीफेन्स महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. सुमेश एम. के.
दर्शनशास्त्र विभाग,
कला संकाय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. विजय कुमार,
दर्शनशास्त्र विभाग,
श्यामा प्रसाद मुखर्जी
महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

सुश्री प्रियम माथुर, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू

एसओआईटीएस अकादमिक सदस्य
प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर, प्रो. बी रुपिणि, डॉ. शुभांगी वैद्य, डॉ. सदानन्द साहू

पाठ्यक्रम निर्माण दल

खण्ड	इकाई लेखक	इकाई अनुवादक
खण्ड 1 आधारभूत अवधारणाएं		
इकाई 1 नीतिशास्त्र का परिचय	डॉ. विल्सन जोस	श्री रिपु दमन प्रीत
इकाई 2 नैतिक कर्म	सुश्री लिजाश्री हजारिका	डॉ. अमित कुमार प्रधान
इकाई 3 सद्गुण और अवगुण	डॉ. विल्फ्रेड डी'सूजा	श्री कुलदीप राय अग्निहोत्री
इकाई 4 नैतिक नियम	डॉ. कुरियन जोसेफ	श्री कुलदीप राय अग्निहोत्री
इकाई 5 नैतिक सापेक्षतावाद	सुश्री लिजाश्री हजारिका	डॉ. आशुतोष व्यास
खण्ड 2 पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त		
इकाई 6 सद्गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू	डॉ. रिचा शुक्ला	सुश्री रिंकी जादवानी
इकाई 7 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्रः इमानुएल काण्ट	डॉ. रिचा शुक्ला	डॉ. आशुतोष व्यास
इकाई 8 परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल	सुश्री सुरभि उनियाल	डॉ. विजय कुमार
इकाई 9 नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन	डॉ. मो. इनामुर रहमान	सुश्री रिंकी जादवानी
खण्ड 3 अधि–नीतिशास्त्र		
इकाई 10 अधि–नीतिशास्त्र का परिचय	सुश्री सुरभि उनियाल	डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव
इकाई 11 नैतिक प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद	सुश्री सुरभि उनियाल	डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव
इकाई 12 विषयिनिष्ठवादः डेविड ह्यूम	सुश्री लिजाश्री हजारिका	डॉ. अमित कुमार प्रधान
इकाई 13 सम्वेगवादः चार्ल्स स्टीवेन्सन	श्री बंशीधर दीप	डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव
इकाई 14 परामर्शवादः आर. एम. हेयर	श्री बंशीधर दीप	डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव

विषय–वस्तु सम्पादक

डॉ. प्रगति साहनी,
सह–प्राध्यापिका, दर्शन विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. सुदन्या कुलकर्णी,
सह-प्राध्यापिका, दर्शन विभाग,
जानकी देवी स्मृति
महाविद्यालय, दिल्ली

डॉ. विजय कुमार,
सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग,
श्यामा प्रसाद मुखर्जी
महाविद्यालय, दिल्ली

डॉ. आयशा गौतम
सहायक प्राध्यापिका,
दर्शन विभाग, दिल्ली
विश्वविद्यालय

श्री इकबाल हुसैन अहमद
सहायक प्राध्यापक, तेजपुर
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तेजपुर

डॉ. अमित कुमार प्रधान,
सहायक प्राध्यापक, दर्शन
विभाग, रामजस महाविद्यालय,
दिल्ली

विषय–वस्तु सम्पादक (हिन्दी)

डॉ. अमित कुमार प्रधान
स्हायक प्राध्यापक
रामजस महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. विजय कुमार,
सहायक प्राध्यापक
दर्शन विभाग,
श्यामा प्रसाद मुखर्जी
महाविद्यालय, दिल्ली

सुश्री रिंकी जादवानी
व्याख्याता (दर्शनशास्त्र)
मानविकी विभाग, दिल्ली
तकनीकि विश्वविद्यालय, दिल्ली

श्री दिनेश पाटीदार
सहायक प्राध्यापक,
दर्शन विभाग, कमला राजे
कन्या पीजी महाविद्यालय,
ग्वालियर

डॉ. आशुतोष व्यास,
परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र)
एसओआईटीएस, इग्नू,
नई दिल्ली

प्रारूप सम्पादक

प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर
एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. आशुतोष व्यास
परामर्शदाता, एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर
एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

कवर डिजाइन : सुश्री नीतिका सिंह, विद्यावाचस्पति शोधक (दर्शनशास्त्र), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर

सामग्री उत्पादन

श्री सुधीर कुमार
सहायक कुलसचिव
एमपीडीडी, इग्नू, नई दिल्ली

मई, 2021

© *इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021*

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के अन्य पाठ्यक्रमों संबंधी और जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068 से सम्पर्क करें अथवा हमारी वेबसाइट http://www.ignou.ac.in पर जाएं।
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव (एमपीडीडी), इग्नू, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित
लेज़र टाइप सेट : टेस्सा मीडिया एंड कंप्यूटर्स
मुद्रण :

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय–वस्तु

		पृष्ठ सं.
खण्ड 1	**आधारभूत अवधारणाएं**	**9**
इकाई 1	नीतिशास्त्र का परिचय	11
इकाई 2	नैतिक कर्म	25
इकाई 3	सद्‌गुण और अवगुण	41
इकाई 4	नैतिक नियम	53
इकाई 5	नैतिक सापेक्षतावाद	67
खण्ड 2	**पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त**	**83**
इकाई 6	सद्‌गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू	85
इकाई 7	कर्तव्यपरक नीतिशास्त्रः इमानुएल काण्ट	96
इकाई 8	परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल	107
इकाई 9	नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन	119
खण्ड 3	**अधि–नीतिशास्त्र**	**133**
इकाई 10	अधि–नीतिशास्त्र का परिचय	135
इकाई 11	नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद एवं निर्प्रकृतिवाद	147
इकाई 12	विषयिनिष्ठवादः डेविड ह्यूम	155
इकाई 13	सम्वेगवादः चार्ल्स स्टीवेन्सन	167
इकाई 14	परामर्शवादः आर. एम. हेयर	177
सहायक अध्ययन–सामग्री (हिन्दी भाषा)		**186**

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

दर्शन की वह शाखा, जो अच्छे (शुभ) और बुरे (अशुभ) मानवीय (मानव से सम्बन्धित) आचरण के अन्तर को स्थापित करने के लिए आवश्यक अवधारणाओं और सिद्धान्तों का व्यवस्थित अध्ययन करती है, नीतिशास्त्र या नीति–दर्शन कहलाती है। नीतिशास्त्र का विचारणीय विषय है कि व्यक्ति या समाज के लिए (अच्छा, उचित, सही) शुभ (श्रेय, भारतीय दर्शन, और संस्कृति की एक अवधारणा) क्या है? नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त प्रायः तीन क्षेत्रों में बांटे जाते हैंः अधि–नीतिशास्त्र (मेटाएथिक्स), मानकीय नीतिशास्त्र (नॉर्मेटिव एथिक्स) और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र (एप्लायड एथिक्स)। अधिनीतिशास्त्र नैतिक सिद्धान्तों और अवधारणाओं का अर्थ और उत्पत्ति का अन्वेषण करता है। "शुभ" का क्या अर्थ है, नैतिक कथनों की प्रकृति क्या है? क्या नैतिक कथन केवल भावनात्मक (सम्वेगात्मक) निर्णय हैं या केवल परामर्श हैं? क्या नैतिक कथन सत्य या असत्य हो सकते हैं? इस प्रकार के प्रश्न अधिनीतिशास्त्र के विचारणीय प्रश्न हैं। दूसरी ओर मानकीय नीतिशास्त्र मानवीय आचरण के मूल्यांकन हेतु सिद्धान्तों और मानकों को बताती है। यह बताती है कि क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए। यह उन मानकीय सिद्धान्तों की व्युत्पत्ति और प्रमाणीकरण की चर्चा करती है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र मानकीय सिद्धान्तों के व्यावहारिक समस्याओं में अनुप्रयोग से सम्बन्धित है। यह किसी व्यावहारिक नैतिक समस्या को सुलझाने के लिए अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों को सन्दर्भित कर सकती है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र विवादित यद्यपि व्यावहारिकतः महत्वपूर्ण विशिष्ट मुद्दों, जैसे भ्रूण–हत्या, गर्भपात, दया–मृत्यु, पशु–अधिकार, पर्यावरणीय चिन्ता, समलंगिकता, मृत्यु–दण्ड, आदि का परीक्षण करती है। नीतिशास्त्र के तीनों क्षेत्र अन्तर्सम्बन्धित हैं और वास्तव में एक ही तत्त्व; नीतिशास्त्र के तीन भिन्न आयाम/पहलू हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम पशु–अधिकार के मुद्दे की परीक्षा करना चाहते हैं, तो इसमें परिणामवाद अथवा कोई अन्य प्रासंगिक मानकीय सिद्धान्त का अनुप्रयोग किया जा सकता है। लेकिन यह "अधिकार" से क्या तात्पर्य है और क्या इस तात्पर्य का अनुप्रयोग पशुओं के मुद्दों में किया जा सकता है, जैसे अधिनीतिशास्त्रीय मुद्दों की ओर ले जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र किसी कृत्य या आचरण का मूल्यांकन शुभ या अशुभ की तरह करने का साधन देता है। यह आवश्यक नहीं कि यह सर्वदा समस्या का हल प्रदान करे। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आधारभूत नीतिशास्त्रीय वाद–विवादों और अवधारणाओं की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान करना है। इकाईयों में सिद्धान्तों की समझ के लिए यथास्थान भारतीय सन्दर्भों और उदाहरणों का उपयोग किया गया है।

इस पाठ्यक्रम में तीन खण्डों में विभक्त चौदह इकाईयां हैं। यह पाठ्यक्रम मानकीय नीतिशास्त्र और अधिनीतिशास्त्र पर विशेष बल देता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र की बढ़ते महत्व को ध्यान में रखते हुए इससे सम्बन्धित पाठ्यक्रम अलग से विकसित किया गया है।

खण्ड एक नीतिशास्त्र की "आधारभूत अवधारणाओं" से सम्बन्धित है। यह खण्ड नीतिशास्त्र का परिचय प्रस्तुत करता है, चर्चा करता है कि किसे नैतिक कृत्य कहेंगे, सद्गुण और अवगुण क्या हैं, नैतिक नियम और नैतिक सापेक्षतावाद की अवधारणाएं क्या हैं।

खण्ड दो, "पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों" के बारे में है। यह खण्ड अतिमहत्वपूर्ण पाश्चात्य मानकीय सिद्धान्तों जैसे अरस्तू का सद्‌गुण नीतिशास्त्र, इमानुएल काण्ट का कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र और जे. एस. मिल का परिणामी नीतिशास्त्र की चर्चा करता है।

खण्ड तीन "अधिनीतिशास्त्र" की व्यापक चर्चा करता है। यह अधिनीतिशास्त्र के मूलभूत धारणाओं/मान्यताओ, नैतिक प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद के मध्य वाद–विवाद, डेविड ह्यूम के व्यक्तिवाद, चार्ल्स स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद और आर. एम. हेयर के परामर्शवाद की चर्चा करता है।

समग्ररूप से तीनों खण्ड नीतिशास्त्र का परिचय तैयार करते हैं। नीतिशास्त्र के दो मुख्य क्षेत्रों– मानकीय नीतिशास्त्र और अधिनीतिशास्त्र की अवधारणाओं और सिद्धान्तों का समावेश इस पाठ्यक्रम में किया गया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

BPYC-132
(बीपीवाईसी-132)

खण्ड 1
आधारभूत अवधारणाएं

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड परिचय

खण्ड 1 "आधारभूत अवधारणाएं" की पाँच इकाईयां नीतिशास्त्र की विविध अवधारणाओं, घटक तत्त्वों, और पूर्वमान्यताओं और इसके अध्ययन के बारे में हैं। आरम्भ में ही इन अवधारणाओं का अध्ययन विद्यार्थी को नीतिशास्त्र के कार्यक्षेत्र और महत्ता और एक–दूसरे से मानवीय विचार–विमर्श और एक जीवन का दूसरे जीवन में सम्मिलित होना और स्वयं अपने और अन्य के स्व पर मानवीय प्रतिबिम्बन की हजारों वर्षों की यात्रा में विकसित विविध नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों को समझने में सक्षम बनायेगा।

इकाई 1 "नीतिशास्त्र का परिचय" नीतिशास्त्र की आमजन और दार्शनिकों की समझ की चर्चा करती है। यह यह दर्शान का प्रयास भी करती है कि क्यों नीतिशास्त्र दर्शन की शाखा है। यह इकाई नीति–दर्शन या नीतिशास्त्र के विकास का ऐतिहासिक रेखाचित्र खींचती है। इस इकाई में, विद्यार्थी हमारे दैनन्दिन जीवन में नीतिशास्त्रीय अध्ययन का कार्यक्षेत्र और महत्ता को समझेगा। यह इकाई नीतिशास्त्र और नैतिकता के मध्य भेद को दर्शाने का प्रयास करती है।

इकाई 2 "नैतिक कृत्य" मानव के सम्बन्ध में नैतिक कृत्य की अवधारणा पर बात करती है। यह इकाई नैतिक कृत्य को परिभाषित करने का एक प्रयास है और किसी कृत्य को नैतिक बनाने वाली स्थितियों, पूर्वमान्यताओं और घटकों की चर्चा करती है।

इकाई 3 "सद्गुण और अवगुण" सद्गुण और अवगुण की चर्चा करती है। इस इकाई में, विद्यार्थी इस बात को सीखेगा और समझेगा कि क्यों कोई एक कृत्य सद्गुण और दूसरा अवगुण। इस इकाई का केन्द्रीय विषय विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परम्पराओं में सद्गुण और अवगुण को समझना है।

इकाई 4 "नैतिक नियम" नैतिकता को नियम की तरह देखने के बारे में है। नैतिक नियम से आशय है वस्तुनिष्ठ और सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त या उचित और अनुचित की समझ से। इस इकाई में, विद्यार्थी उन निहितार्थों और परिणामों को देखेगा जो नैतिक सिद्धान्त को प्राकृतिक नैतिक नियम के रूप में लेने से सम्बन्धित हैं।

इकाई 5 "नैतिक सापेक्षतावाद" नैतिकता की चर्चा सापेक्षिक अवधारणा बतौर करती है। प्रत्येक समाज या संस्कृति की नैतिकता और नैतिक सिद्धान्तों की अपनी समझ होती है। नैतिक सापेक्षतावाद का आधारभूत प्रतिज्ञा है कि, किसी समाज या संस्कृति में स्वीकृत किसी कृत्य के मूल्यांकन का कोई वस्तुनिष्ठ मापदण्ड की सम्भावना नहीं है। न केवल नैतिक सिद्धान्त, अपितु नैतिक मापदण्ड संस्कृति–सापेक्ष होते हैं। नैतिक सापेक्षतावाद को विषयिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद तक विस्तारित किया जा सकता है।

इकाई 1 नीतिशास्त्र का परिचय*

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 नीतिशास्त्र का क्षेत्र

1.3 नीतिशास्त्र का इतिहास

1.4 नीतिशास्त्र की प्रविधियाँ

1.5 नीतिशास्त्र के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण

1.6 नीतिशास्त्र का विभाजन

1.7 नीतिशास्त्र और अन्य विज्ञान

1.8 नीतिशास्त्र और धर्म

1.9 नीतिशास्त्र का महत्व

1.10 हमें नैतिक क्यों होना चाहिए?

1.11 सारांश

1.12 कुंजी शब्द

1.13 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

आपको नीतिशास्त्र या नैतिक दर्शन से परिचित कराना इस इकाई का उद्देश्य है। नीतिशास्त्र एक वृहद् विषय है। इसके विभिन्न पक्षों के विश्लेषण से जान सकते है:

- नीतिशास्त्र की प्रकृति और विभिन्न पक्ष,
- पाश्चात्य दर्शन में नीतिशास्त्र कैसे एक व्यवस्थित दार्शनिक विषय के रूप में विकसित हुआ,
- नीतिशास्त्र की पद्धतियां/प्रविधियाँ, विभिन्न दृष्टिकोण, और विभाजन,
- कैसे नीतिशास्त्र अन्य विज्ञानों से संबद्ध है,
- धर्म और नीतिशास्त्र का सम्बन्ध,
- आज के सन्दर्भ में नीतिशास्त्र के अध्ययन का महत्व और नैतिक होने की आवश्यकता।

1.1 परिचय

व्युत्पत्ति की दृष्टि से नीतिशास्त्र के लिये प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द ऐथिक्स (ethics) ग्रीक भाषा के इथोस (ethos) से सम्बन्धित है जिसका अर्थ है; चरित्र, स्वभाव, रीति, व्यवहार

* डॉ. विलियम जोस, सेन्ट जॉन्स महाविद्यालय, कोन्डाडाब, अनुवादक– श्री रिपु दमन प्रीत, फरीदाबाद

के प्रकार इत्यादि। नीतिशास्त्र को 'नैतिक दर्शन' (Moral Philosophy) भी कहते हैं जो मॉरल (moral) से उद्‌भुत है जो प्रथाओं, चरित्र, आचार इत्यादि को द्योतित करता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र को मानव क्रियाओं का अभीष्ट सुख प्राप्त करने के साधन के रूप में उनके सही या गलत होने के विचार से व्यवस्थित अध्ययन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यह मानव के उस व्यवहार का आत्ममंथन है, जिसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। सरल शब्दों में, नीतिशास्त्र का सम्बन्ध क्या अच्छा है और उसे कैसे प्राप्त करें; तथा क्या बुरा है और उससे कैसे बचें, के प्रश्न से है। यह बताता है कि अच्छे को प्राप्त करने हेतु क्या करना समीचीन है और बुरे से बचने हेतु क्या नहीं करना चाहिए।

एक दार्शनिक विषय के रूप में, नीतिशास्त्र उन मूल्यों और दिशा–निर्देशों का अध्ययन है, जिनके साथ हम जीवन जीते हैं। इसमें इन मूल्यों और दिशा–निर्देशों का औचित्य भी सम्मिलित है। यह केवल परम्पराओं तथा प्रथाओं का अनुसरण मात्र नहीं है वरन् इसमें सार्वभौम सिद्धांतों के प्रकाश में इन दिशा–निर्देशों के विश्लेषण व मूल्यांकन की आवश्यकता भी होती है। नैतिक दर्शन के रूप में, नीतिशास्त्र नैतिकता, नैतिक समस्याओं, और नैतिक निर्णयों के बारे में दार्शनिक विचारणा है।

नीतिशास्त्र उस सीमा तक विज्ञान है, जिसमें यह बुद्धि से प्राप्त सत्य का तार्किक क्रम से संगठित विषय है और इसमें इसके विशिष्ट विषय और औपचारिक विषय भी आते हैं। यह एक बुद्धिपरक विज्ञान है क्योंकि इसमें सिद्धान्तों को मानव बुद्धि से, उसकी स्वतन्त्र इच्छा से सम्बद्ध अवधारणाओं से निगमित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, इसमें इसका परोक्ष लक्ष्य जीवन जीने की वह कला है, जिसके द्वारा मानव उचित तर्कबुद्धि से उन्नयन ढंग से अथवा आराम से जी सकता है। यह एक निर्देशात्मक/नियामक विज्ञान है क्योंकि यह मानव जीवन को नियंत्रित और निर्देशित करता है तथा किसी के जीवन–अस्तित्व को सही दिशा देता है।

नीतिशास्त्र सैद्धान्तिक और व्यावहारिक भी है। यह सैद्धान्तिक है क्योंकि यह आधारभूत सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, जिसके द्वारा नैतिक निर्णय लिए जाते हैं। यह व्यावहारिक है क्योंकि यह लक्ष्य और उसको प्राप्त करने के साधनों से सम्बन्धित है। नीतिशास्त्र को कभी–कभी नैतिकता से पृथक किया जाता है। ऐसे में नीतिशास्त्र स्पष्टरूप से, मानव धारणाओं तथा परिपाटियों पर दार्शनिक–प्रतिबिम्बन है, जबकि नैतिकता का सम्बन्ध अच्छे या बुरे की प्रथम क्रम की ऐसी धारणाओं तथा परिपाटियों से हैं, जिसके द्वारा मानव अपना आचार निर्देशित करता है। यद्यपि अधिकतर इन्हें एक ही अर्थ में समझा जाता है।

नीतिशास्त्र केवल 'नियमों' का समूह ही नहीं है। यह निश्चित रूप से नैतिक नियमों से सम्बन्धित है, फिर भी हम नीतिशास्त्र को नैतिक नियम नहीं कह सकते हैं। नीतिशास्त्र प्रथमतया किसी के व्यवहार को प्रतिबंधित करने हेतु नहीं है, बल्कि यह अच्छा या बुरा परखने में और उसे प्राप्त करने में लोगों की सहायता करता है। नैतिक मान्यताओं के कर्तव्यपरक चरित्र नैतिक अन्वेषण/जिज्ञासा के शुद्ध उद्देश्य से निकलते हैं जैसे; व्याख्या के परम सिद्धान्तों की खोज या कोई व्यक्ति को कोई कार्य क्यों करना चाहिए, का परम–कारण खोजना।

1.2 नीतिशास्त्र का क्षेत्र

नीतिशास्त्र मनुष्य के ऐच्छिक कर्मों से सम्बन्धित है। हम मानवीय कर्म एवं मानव कर्म के बीच अंतर कर सकते हैं। मानवीय कर्म वे हैं जिन्हें व्यक्ति सचेतन रूप से, सप्रयास, किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करता है। मानव कर्म संकल्पतः, ऐच्छिक, सचेतन, सप्रयास एवं सोद्देश्य नहीं भी हो सकते हैं। दोनों में केवल एक समानता है कि दोनों प्रकार के कर्म (सोना, टहलना आदि) मनुष्य द्वारा संपन्न किए जाते हैं। निहितार्थ के आधार पर ही इन दोनों कर्मों में अन्तर किया जा सकता है। नीतिशास्त्र में हम केवल मानवीय कर्मों को ही सम्मिलित करते हैं।

1.3 नीतिशास्त्र का इतिहास

प्रथम नैतिक आदेश निश्चय ही माता–पिता और बड़े–बूढ़ों के मुख द्वारा जारी किए गए, परंतु जैसे ही समाज ने लिखित भाषा का प्रयोग सीखा, उसने अपनी नैतिक धारणाएँ लिखना आरम्भ कर दिया। ये अभिलेख नीतिशास्त्र की उत्पत्ति के प्रथम ऐतिहासिक साक्ष्य बनाते हैं।

जिस सीमा तक यह मानव व्यवहार का अध्ययन है, हम वास्तविक रूप से नीतिशास्त्र का इतिहास नहीं जान सकते। फिर भी मानव व्यवहार के व्यवस्थित अध्ययन के रूप में हम यह कह सकते हैं कि किस प्रकार नीतिशास्त्र एक विषय के रूप में विकसित हुआ। ऐसा नहीं है कि पहले हमारे पास नैतिक संप्रत्ययों का एक स्पष्ट इतिहास है और फिर पृथक रूप से दूसरे स्तर पर दार्शनिक समीक्षाओं का इतिहास है। नैतिक दर्शन का इतिहास लिखने के लिए बीते हुए समय से नैतिक दर्शन, जैसा आज हम कहते हैं, के अन्तर्गत आने वाले भाग के सावधानी पूर्वक चयन की आवश्यकता है। हमें मृत संग्रहालयवाद, जो इस भ्रम में होता है कि हम बिना किसी पूर्वधारणा (प्रत्यक्ष) के भूतकाल तक पहुँच सकते हैं, और इस विश्वास कि भूतकाल का समग्र बिन्दु यह है कि यह हमारे अन्दर पल्लवित–पुष्पित होना चाहिए। किन्तु, हम नैतिक विचार के क्रमिक विकास को आरम्भ से हमारे समय तक देख सकते हैं।

ऋग्वेद में (ऐसा माना जाता है कि *ऋग्वेद* मानव बुद्धि का प्रथम लिखित उदाहरण/ग्रन्थ है; वैदिक परम्परा मौखिक परम्परा थी, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होती रही।) हमें ऋत् का संप्रत्यय मिलता है, ऋत् का तात्पर्य सृष्टि–विषयक के साथ–साथ नैतिक नियम से भी है। ऋत् को हम नैतिक दर्शन की ओर अनुगमन का प्रथम उदाहरण मान सकते हैं। भारतीय दर्शन में नैतिक वर्गीकरण के अलावा, नैतिक सिद्धान्तों पर ज्यादा परिचर्चा की गयी है। जैसाकि हम देख सकते हैं कि पुरुषार्थ को मानव के जीवन का उद्देश्य कहा जाता है। नैतिक जीवन के बिना मनुष्य अपने जीवन के अर्थ तथा सर्वोच्च उद्देश्य को जान तथा प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, साधनचतुष्टय (शम, दम आदि) मोक्ष की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन तथा जड़वादी दार्शनिक परम्परा चार्वाक में भी नैतिक दर्शन के आधार को विकसित किया गया है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आधारभूत नैतिक स्तम्भों को लगभग समस्त भारतीय दर्शन परम्परा में स्वीकार किया गया है, लेकिन उन्हें स्थापित करने के लिए प्रत्येक परम्परा की तत्त्वमीमांसा पृथक–पृथक है। बौद्ध दर्शन अनत्ता (अनात्मवाद) के द्वारा इसकी स्थापना तथा व्याख्या करते हैं, जैन दर्शन इसे अनेकान्तवाद से स्थापित करते हैं।

पाश्चात्य दर्शन में नीतिशास्त्र के इतिहास को पाँचवी शताब्दी में सुकरात के आविर्भाव से माना जा सकता है। एक यवन दार्शनिक के रूप में अपने मानव भाइयों को उनकी धारणाओं और परिपाटियों की बुद्धिमत्तापूर्ण आलोचना करने हेतु प्रेरित करना उनका लक्ष्य था। यह वह समय था जब दार्शनिकों ने स्थापित नैतिक आचारों में कारण ढूंढना आरम्भ कर दिया था। नैतिक निर्णयों के तार्किक आधार की माँग करते हुए सुकरात ने मूल्यों और तथ्यों में तार्किक सम्बन्ध खोजने की समस्या की ओर ध्यान खींचा और इस तरह नैतिक दर्शन की रचना की। हम प्लेटो के रूप/आकार सिद्धान्त को नैतिक यथार्थवाद की प्रतिरक्षा और नैतिक सत्यों हेतु वस्तुनिष्ठ आधार प्रदान करने के प्रथम प्रयास के रूप में देख सकते हैं। *रिपब्लिक* से लेकर बाद के संवादों और उपदेशों तक प्लेटो ने प्रकृति, ईश्वर और मानव के बारे में व्यवस्थित विचार बनाए जिससे लोगों ने अपने सिद्धान्त निगमित किये हैं। अपने नैतिक दर्शन में उनका मुख्य लक्ष्य शुभ के दर्शन की ओर मार्ग प्रशस्त करना था। अरस्तू अपने अन्वेषण की प्रविधि और मानव जीवन में नैतिक सिद्धान्तों की भूमिका के अपने विचार में प्लेटो से अलग थे। जहाँ प्लेटो धार्मिक और आदर्शात्मक नीतिशास्त्र के अग्रज थे वहीं अरस्तू ने प्राकृतिक परम्परा को जन्म दिया। अरस्तू अपने नैतिक लेखों *यूडेमोनिया एथिक्स, दि निकोमेकियन एथिक्स* और *द पोलिटिक्स* में पहली बार नीतिशास्त्र के आधारों की व्यवस्थित छानबीन करते हैं। अरस्तू के सद्गुणों के उद्धरण को प्रथम अनवरत नियामक नीतिशास्त्र के अन्वेषण के रूप में देखा जा सकता है। यह ग्रीक–रोमन चिंतन और यहूदी तथा मध्य–पूर्व धर्मों का स्पष्ट मिश्रण था।

मध्यकाल क्रिश्चियन काल दार्शनिकों और ऑगस्टाइन और थॉमस एक्वीनास जैसे धर्मशास्त्रियों के विचारों से प्रभावित था। ईसाईयत ने नैतिक परिदृश्य को प्रभावित किया हुआ था। अतः, इस काल में दर्शन और धर्म में अंतर करना कठिन था। ईसाई दर्शन के उत्थान ने नीतिशास्त्र के इतिहास में नए युग का सूत्रपात किया। पूर्व मध्यकाल के सर्वाधिक प्रभावी संत ऑगस्टाइन के दर्शन में नीतिशास्त्र इहलोक के सुखी जीवन और निर्वाण का हेतु बन गया। थॉमस एक्वीनास मध्यकालीन दर्शन के दूसरे बड़े व्यक्ति थे। इन्होंने अरस्तू के विज्ञान और दर्शन तथा ऑगस्टाइन के धर्मशास्त्र को एक वास्तविक धरातल पर खड़ा कर दिया। एक्वीनास अरस्तू के प्रकृतिवाद की संगति ईसाई मत से बनाने और प्रकृति, मानव तथा ईश्वर का एकीकृत विचार प्रस्तुत करने में पर्याप्त रूप से सफल रहे।

मध्यकाल के अंत सूचक सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों और औद्योगिक लोकतंत्र के उत्थान ने नैतिक क्षेत्र में नये चिन्तन की लहर उत्पन्न की। उद्योग और वाणिज्य के विकास, विश्व के नए क्षेत्रों की खोज, विज्ञान में कॉपरनिकस एवं गैलीलियो की क्रांति तथा सशक्त धर्म–निरपेक्ष सरकारों ने वैयक्तिक आचारों एवं सामाजिक संगठनों के नए सिद्धान्तों की माँग की। नैतिक चिन्तन के परिवर्तन में बड़ा योगदान देने वाले दार्शनिकों में फ्रंसिस बेकन, रेने देकार्त, थामस हॉब्स, गॉटफ्राइड विल्हेम लाइबनित्स, बेनेडिक्ट द स्पिनोजा, जॉन लॉक, डेविड ह्यूम, इमैन्युअल काण्ट, जॉन स्टुअर्ट मिल और फ्रेडरिक नीत्शे आदि प्रमुख थे। पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय चिंतन में काल मार्क्स एवं सिगमंड फ्रॉयड के आगमन के साथ एक नया अध्याय जुड़ा। इन सबके विस्तृत योगदान का यहाँ विवरण देना हमारा लक्ष्य नहीं है। यद्यपि, अंग्रेजी एवं फ्रांसीसी दर्शन (लॉक, ह्यूम, बेंथम, स्टुअर्ट मिल) से प्रभावित उपयोगितावाद और जर्मनी एवं इटली (काण्ट, हेगल, नीत्शे) का आदर्शात्मक नीतिशास्त्र इस समय का सर्वाधिक प्रबल चिंतन था।

समकालीन नैतिक परिदृश्य अध्ययन का एक और जटिल क्षेत्र है। समकालीन यूरोपीय नीतिशास्त्र बृहद अर्थों में संवृत्तिशास्त्र (Phenomenology) से लेकर सम्प्रेषणात्मक क्रिया (communicative action) के सिद्धान्तों को समाहित करने का प्रयास करता है। समकालीन सभ्यता की दशा ने दार्शनिकों को नीतिशास्त्र तथा नैतिक जीवन के लिए एक यथार्थ भूमि खोजने पर विवश किया। अंग्रेजी भाषी क्षेत्र में जी. ई. मूर की *प्रिंसीपिया एथिका* (1903) को समकालीन नैतिक सिद्धान्तों का आरम्भिक बिंदु माना जाता है। विश्व के अन्य स्थानों पर मार्टिन बुबर, गैब्रिएल मार्सेल, इमैन्यूअल लेविनास, मैक्स शिलर, फ्रेंज ब्रेन्टानो और जॉन ड्युई ने नैतिक चिंतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी:क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) पाश्चात्य दर्शन में नीतिशास्त्र के विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 नीतिशास्त्र की प्रविधियाँ

दार्शनिक विषय के रूप में नीतिशास्त्र, दर्शन की प्रविधियाँ अपनाता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र में आगमनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों पद्धतियाँ प्रयुक्त होती हैं। निगमन तार्किक बुद्धि द्वारा बिना किसी अनुभव के ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है। निगमनात्मक तर्क–वितर्क सार्वभौमिक या सामान्य सत्य से आरंभ होता है और सामान्य की बजाय, किसी विशिष्ट बिंदु की ओर जाता है। निगमनात्मक तर्क का शास्त्रीय रूप न्यायवाक्य है, जिसमें दो स्वीकृत आधारवाक्यों से निष्कर्ष निगमित होता है जैसे, सभी मानव नश्वर हैं, अ एक मनुष्य है, अतः अ नश्वर है। आगमन अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। आगमन विशिष्ट से प्रारंभ होकर सामान्य या सार्वभौमिक की ओर बढ़ता है। यदि कई कौओं को देखा जाता है, जो सभी काले हैं, कोई ऐसा कौआ नहीं दिखाई पड़ता जो काला न हो तो विशिष्ट निष्कर्ष होगा कि अगला कौआ काला होगा या एक सामान्य निष्कर्ष होगा कि सभी कौए काले हैं। यह आगमनात्मक अनुमान है।

नीतिशास्त्र में आगमनात्मक पद्धति (विशिष्ट से सामान्य) को निगमनात्मक (सामान्य से विशिष्ट) की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है।

1.5 नीतिशास्त्र के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण

नीतिशास्त्र के अध्ययन के मूलतः चार दृष्टिकोण हैं। टाम एल. ब्यूचौम्प इसे अपनी पुस्तक *फिलॉसोफिकल एथिक्सः एन इन्ट्रॉडक्शन टू मॉरल फिलॉसोफी* में निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत करते हैं :

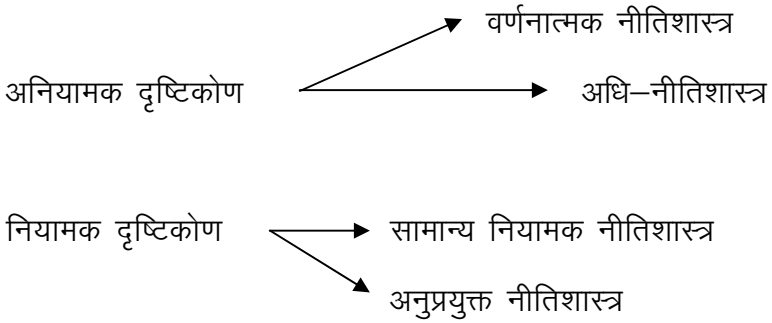

अनियामक दृष्टिकोण सही या गलत के निर्णय के बिना नैतिकता की जाँच करते हैं। ये किसी नैतिक समस्या का पक्ष नहीं लेते हैं। वहीं नियामक दृष्टिकोण सही या गलत का निर्णय लेते हैं। ये नैतिक समस्याओं के सम्बन्ध में स्पष्ट नैतिक पक्ष लेते हैं।

नीतिशास्त्र के दो अनियामक दृष्टिकोणों में वर्णनात्मक नीतिशास्त्र किसी समाज या संस्कृति की नैतिक परिपाटियों एवं धारणाओं की व्याख्या करने का प्रयास करता है। यह उसी तरह से है जैसा कि समाजशास्त्री, मानवशास्त्री और इतिहासकार अपने अध्ययन एवं शोध में प्रायः करते हैं। वे अपने वर्णन में परिपाटियों एवं धारणाओं की नैतिकता के बारे में कोई निर्णय नहीं करते वरन् केवल विभिन्न समूहों एवं संस्कृतियों में प्रचलित परिपाटियों का वर्णन करते हैं। अधि नीतिशास्त्र नैतिक तर्क–वितर्क और निर्णय में प्रयुक्त केन्द्रीय शब्दावलियों के अर्थ के विश्लेषण पर केन्द्रित रहता है। यह अर्थ सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है।

1.6 नीतिशास्त्र का विभाजन

नीतिशास्त्र के पूरे अध्ययन को सामान्य नीतिशास्त्र (नैतिक क्रिया की प्रकृति, नैतिकता का मानदण्ड, नैतिकता का आधार, नैतिकता का लक्ष्य, आदि) और विशिष्ट नीतिशास्त्र (मानव क्रिया–कलाप की विभिन्न क्रियाओं हेतु सामान्य नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग) में बाँटा जा सकता है।

यद्यपि, जब हम नैतिक सिद्धान्तों की बात करते हैं, दार्शनिक प्रायः आज कल उन्हें तीन सामान्य विषय क्षेत्रों में विभाजित करते हैंः तत्वमीमांसीय नीतिशास्त्र (अधिनीतिशास्त्र), नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त या व्यावहारिक नीतिशास्त्र। अधिनीतिशास्त्र नैतिक संप्रत्ययों की उत्पत्ति और अर्थ की छानबीन करता है। यह ऐसे प्रश्नों का अध्ययन करता है कि हमारे नैतिक सिद्धान्त कहाँ से आए और उनका क्या अर्थ है। यह नैतिक मूल्यों के अभीष्ट अर्थ को विश्लेषित करने का प्रयास करता है। यह एक अधिक व्यावहारिक कार्य है। यह उचित व्यवहार हेतु एक आदर्श कसौटी की खोज है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र विवादास्पद विषयों जैसे, गर्भपात, शिशुहत्या, पशु–अधिकार, पर्यावरणीय समस्या, समलैंगिकता आदि की समीक्षा करता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र में व्यक्ति अधिनीतिशास्त्र और नियामक नीतिशास्त्र की सहायता से इन समस्याओं के हल ढूँढ़ने का प्रयास करता है।

अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र, अधिनीतिशास्त्र और नियामक नीतिशास्त्र में प्रायः विभाजक रेखा स्पष्ट नहीं है। जैसे गर्भपात अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र का विषय है क्योंकि यह एक विशिष्ट प्रकार का विवादास्पद व्यवहार है। परंतु यह नियामक नीतिशास्त्र का भी विषय है क्योंकि इसमें स्वशासन और जीने का अधिकार सम्मिलित है और इसमें 'अधिकारों का आधार क्या है?' 'किस प्रकार की सत्ताओं के पास अधिकार होते हैं?' जैसे अधिनीतिशास्त्र के भी प्रश्न सम्मिलित हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी:क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नीतिशास्त्र निगमनात्मक विधि का प्रयोग कैसे करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नीतिशास्त्र के विभाजन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 नीतिशास्त्र और अन्य विज्ञान

नीतिशास्त्र की प्रकृति और परिभाषा के विश्लेषण में हमने देखा कि नीतिशास्त्र लक्ष्य, आदर्श या मानक की बात करता है। जबकि अधिकतर विज्ञान अनुभवों की एकरूपता की बात करते हैं, जैसे, किस तरह से विशेष प्रकार की वस्तुओं (चट्टानों या पौधों) के अस्तित्व को प्राप्त किया जाता है, किस तरह विशेष प्रकार की घटनाएँ (ध्वनि या बिजली) घटित होती है। इन विज्ञानों का किसी लक्ष्य विशेष, जिन्हें प्राप्त करना होता है, या फिर किसी आदर्श विशेष, जिसके सन्दर्भ में तथ्यों का निर्णय होता हो, से सीधा सम्बन्ध नहीं होता है।

अन्य विज्ञान		नीतिशास्त्र
मनोविज्ञान	मानव कैसे व्यवहार करता है (वर्णनात्मक विज्ञान)	मानव को कैसे व्यवहार करना चाहिए (नियामक विज्ञान)
मानवशास्त्र	मानव तथा उसके क्रिया कलापों की प्रकृति	मानव के कृत्य कैसे होना चाहिए
सामाजिक और राजनीतिक विज्ञान	मानव के सामाजिक और राजनीतिक जीवन के संगठन से संबद्ध	मानव का सामाजिक और राजनीतिक जीवन नैतिक होने के लिए कैसे संगठित होना चाहिए
अर्थशास्त्र	वस्तुओं से सम्बन्धित है, जैसे वैसी वस्तुएँ जो मानव की आवश्यकता पूरा करती हैं।	उन क्रियाओं से सम्बन्धित है जो मानव के द्वारा उसके अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शर्तें हैं।

नीतिशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों से इन अर्थों में अलग है कि इसका व्यक्ति के अभीष्ट लक्ष्य से सीधा सम्बन्ध होता है। यद्यपि नीतिशास्त्र को कभी–कभी प्रायोगिक विज्ञान कहा जाता है किन्तु यह चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि जैसा प्रायोगिक विज्ञान नहीं है, क्योंकि यह किसी निश्चित परिणाम की प्राप्ति हेतु अग्रसर नहीं होता।

1.8 नीतिशास्त्र और धर्म

नीतिशास्त्र का किसी धर्म विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि कभी–कभी यह तर्क दिया जाता है कि बिना धर्म और ईश्वर के नीतिशास्त्र का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए जहाँ धर्म और ईश्वर की बात है, वहीं नीतिशास्त्र है। यह स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है। यद्यपि ईश्वर या धर्म में विश्वास नैतिक होने के लिए एक कारण हो सकता है, परंतु यह आवश्यक नहीं है कि इसे धर्म या ईश्वर से जोड़ा जाए। यह तथ्य कि नीतिशास्त्र सभी समाजों में मिलता है, सिद्ध करता हे कि यह एक ऐसी प्राकृतिक परिघटना है, जो एक दूसरे को पहचानने की क्षमता रखने वाले और दूसरों के भूतकाल के व्यवहारों को स्मृत रखने वाले दीर्घजीवी स्तनधारियों के सामाजिक और बौद्धिक विकास के क्रम में घटित होती है।

मार्क्स और नीत्शे जैसे धर्मालोचक धर्म को सामाजिक समरूपता का प्रमुख स्रोत और यथास्थिति बनाए रखने और लोगों को अपने सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सीमित रखने का एक साधन मानते हैं। तथापि, धर्म का एक और रूप भी है, जो बताता है कि धर्म व्यक्ति के जीवन में मुक्ति और सामाजिक परिवर्तन हेतु एक प्रबल शक्ति हो सकता है।

1.9 नीतिशास्त्र का महत्व

वर्तमान समय में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीतिशास्त्र का महत्व किसी भी समय से अधिक अनुभव किया जा रहा है। आज विश्व में बढ़ते हुए अपराध का दौर है, जो थमने का नाम नहीं ले रहा है। इसके अतिरिक्त पारंपरिक धर्मों में नैतिक–आचार को प्रेरित करने की क्षमता क्रमशः घटती जा रही है। आतंकवाद, गृह युद्ध, औद्योगिक प्रदूषण, नियोजित मूल्यह्रास, भ्रमात्मक विज्ञापन, प्रवंचक वर्गीकरण, अन्यायपूर्ण मजदूरी, अपराधिक गुट, अवैध जुआ, जबरन वेश्यावृत्ति, विमान अपहरण, मैच फिक्सिंग... जैसी कई अन्य विध्वसंक प्रवृत्तियाँ प्रभावी हैं। वास्तव में, जीवन के कुछ ही क्षेत्र हैं जहाँ नैतिक पतन नहीं है। ऐसी परिस्थिति में ऐसे प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि क्या हम नैतिक रिक्तता की ओर बढ़ रहे हैं? क्या यह नीतिशास्त्र के अंत का हमारा रास्ता है?

हम नीतिशास्त्र क्यों पढ़ें? इसके कम से कम तीन कारण हो सकते है; प्रथम, नैतिक दर्शन या नीतिशास्त्र का अध्ययन जीवन सम्बन्धी परम प्रश्नों पर हमारे विचार और गहन कर सकता है। नीतिशास्त्र का अध्ययन व्यक्ति के अपने कर्मों, निर्णयों आदि के आत्मालोचन एवं मूल्यांकन में सहायक हो सकता है। यह व्यक्ति को स्वयं को जानने तथा उसके लिए क्या अच्छा या उचित है को समझने और उसे प्राप्त कराने में सहायक है।

दूसरे, नैतिक दर्शन का अध्ययन नैतिकता के बारे में अच्छी तरह सोचने में सहायता कर सकता है। निर्णय करते समय यह हमें हमारी नैतिक स्थिति स्पष्ट करने में सहायता कर सकता है। यह किसी नैतिक विषय पर हमारी सोच को विकसित कर

सकता है। हम जीवन में ऐसी स्थितियों का सामना करते हैं, जहाँ हमें यह निर्णय लेना होता है कि क्या करना उचित है और क्या करने से हम बचें। हम कुछ करें कि न करें, क्या चुनें। प्रत्येक निर्णय या चुनाव हम तर्कबुद्धि से करते हैं। निर्णय या चुनाव के औचित्य का निर्णय करने में हमें मानना पड़ता है कि कुछ तर्क और तर्कों से अच्छे हैं। किसी भी परिस्थिति में नैतिक रूप से स्वीकार्य कर्म करने का प्रयास हम सभी को करना चाहिए, इस पर सब सहमत हैं। फिर भी, असहमति इस बात पर है कि वास्तव में क्या कृत्य अच्छा है।

तीसरे, नैतिक दर्शन का अध्ययन हमारे चिन्तन की प्रक्रिया को और तीक्ष्ण बना सकता है यह हमारे मस्तिष्क को तार्किक और बौद्धिक रूप से सोचने तथा नैतिक समस्याओं का अधिक स्पष्ट ढंग से समाधन करने के लिए प्रशिक्षित करता है। नीतिशास्त्र अपरिहार्य है क्योंकि मानव स्वभाव से सामाजिक प्राणी है, जो दूसरे प्राणियों तथा प्रकृति के साथ रहता है। सभी क्रियाएँ जाने–अनजाने दूसरों को भी प्रभावित करती हैं। कोई भी निर्णय लेने से पहले व्यक्ति अपने को सही या गलत के मानदण्डों पर परखता है, यद्यपि मानदण्ड समयानुसार बदल सकते हैं।

इस प्रकार, नैतिक समस्याओं से सबका सामना होता है। कोई भी व्यक्ति बिना नीतिशास्त्र के जीवन नहीं जी सकता, फिर चाहे वह नैतिक सिद्धान्तों से अवगत हो या न हो। जाने–अनजाने हम सभी नैतिक निर्णय लेते हैं, चाहे हम इससे भिज्ञ हों या न हों। हम सबके भीतर नैतिक अभिवृत्तियाँ होती हैं और हम प्रतिदिन नैतिक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

1.10 हमें नैतिक क्यों होना चाहिए?

यह प्रश्न करने वाले कम नहीं है कि हमें नैतिक क्यों होना चाहिए? जीवन की नैतिक संस्थाओं में हम क्यों भाग लें? हम नैतिक विचार क्यों अपनाएँ?

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अच्छा बनने की गहरी इच्छा होती है। प्राकृतिक रूप से मानव अच्छे की ओर झुकता है। प्रत्येक स्त्री–पुरूष अपने हेतु अच्छे की कामना करता है। नैतिक सिद्धान्त और नैतिक परिपाटियाँ अपने हेतु अच्छा प्राप्त करने में सहायता करती है। यह व्यक्ति को नैतिक बनाने में सहायक होता है। नैतिकता का सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्याचरण से अधिक उसके आत्म से होता है। इस प्रकार से देखने पर नैतिकता व्यक्ति की अंतरात्मा से सम्बन्धित है और कुछ ऐसा है जो उसके स्वभाव पर आधरित है। मनुष्य का विवेकी स्वभाव उसे तार्किक और नैतिक सोच–विचार के आधरभूत सिद्धान्त के प्रति जागरूक बनाता है। इसका तात्पर्य है कि मानव क्रियाओं का केवल विषयीगत पक्ष नहीं है वरन् एक वस्तुगत पक्ष भी है जो उसे स्वयं को कुछ सामान्य सिद्धांतों पर खड़ा करते हेतु प्रेरित करता है।

हम देखते हैं कि किसी समाज के लिए हमें कुछ निश्चित नियम–कानून की आवश्यकता होती है। अन्यथा लोगों के समूह में जीवन जीने की संतोषजनक दशा कठिनाई से मिलेगी (न तो प्राकृतिक अवस्था और न ही सर्वव्यापी या सर्वग्रासी राज्य में)। मानव जीवन को सुगम बनाने वाली संस्थाएँ भी बिना कुछ निश्चित नैतिक सिद्धांतों के नहीं चल सकतीं। किन्तु, यहाँ वैयक्तिक स्वतन्त्रता का प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है। समाज किस हद तक व्यक्ति से मांग कर सकती है? अब यहाँ वैयक्तिक स्वतंत्रता का सम्मान नहीं करना चाहिए? क्या नैतिकता मानव के लिए है या मानव नैतिकता के लिए?

नैतिकता बहुत कुछ पोषण की तरह है। हममें से अधिकतर ने कभी पोषण का पाठ्यक्रम नहीं देखा है या इसके बारे में कुछ अधिक पढ़ा है। फिर भी हमें इसके बारे में सामान्य जानकारी है कि क्या खाना चाहिए। इसमें हम फिर भी गलतियाँ करते हैं। एक अच्छे आहार के बारे में सोचना दीर्घावधि में लाभकारी हो सकता है, हम इसका सेवन आरंभ कर सकते हैं भले ही इसका कोई त्वरित लाभ न हो। हमारा नैतिक जीवन भी इसी प्रकार का है। पोषण शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखता है जबकि नैतिकता हमारे नैतिक स्वास्थ्य का। हमारे नैतिक जीवन का पोषण क्या है और क्या घातक है? इसके निर्णय में नीतिशास्त्र सहायक होता है। यह हमारा जीवन स्तर उठाता है, शुभ जीवन जीने में सहायता प्रदान करता है। नैतिकता हमें उन सामान्य विचारों को सुझाती है जो हमें अपने करणीय कर्म सम्बन्धी सहमति बनाने में सहायक होते हैं। यह व्यक्तिगत आग्रहों के स्थान पर मूल्यांकन के वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण ढूढ़ने का प्रयास करती है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नीतिशास्त्र की प्रासंगिकता पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.11 सारांश

नीतिशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन है। यह मानव क्रियाओं का अध्ययन करता है और उनके सही या गलत की जाँच करता है। दार्शनिक विषय के रूप में नीतिशास्त्र में हम उन मूल्यों तथा दिशानिर्देशों का अध्ययन करते हैं जिनके अनुसार हम जीवन जीते हैं। इसके अन्तर्गत केवल मानव के स्वैच्छिक, सचेतन और उद्देश्यपरक कर्म ही आते हैं। मानव इतिहास में नीतिशास्त्र तथा नैतिक जागरूकता की उत्पत्ति को आसानी से नहीं जाना जा सकता है। यह लम्बे समय तक चलने वाले क्रमिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम है।

नीतिशास्त्र आगमन एवं निगमन पद्धति का प्रयोग करता है। नीतिशास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणों में अनियामक नीतिशास्त्र (वर्णनात्मक नीतिशास्त्र और अधि–नीतिशास्त्र), जो बिना किसी सही या गलत के निर्णय के नैतिकता की परख करता है, और नियामक नीतिशास्त्र (सामान्य नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र), जो सही या गलत के निर्णय के साथ नैतिकता की परख करता है, सबसे प्रमुख दृष्टिकोण हैं। नीतिशास्त्र को विज्ञान मान सकते हैं। यद्यपि इसे प्राकृतिक विज्ञान से इतर माना जाता है, क्योंकि यह सीधे मानव के अभीष्ट लक्ष्य से सम्बन्धित है। नीतिशास्त्र को सभी विज्ञानों का फल कहा जाता है, क्योंकि यह सभी विज्ञानों और अन्य स्रोतों से परम स्वतन्त्रता के अन्तिम लक्ष्य के सन्दर्भ में ज्ञान लेकर मनुष्य को पूर्ण बनाता है।

1.12 कुंजी शब्द

'नीतिशास्त्र' और 'शिष्टाचार' : नीतिशास्त्र सही और गलत आचार का सिद्धान्त है। शिष्टाचार इसका अभ्यास। नीतिशास्त्र जहाँ परिस्थिति विशेष के मूल्य से सम्बन्धित है, वहीं शिष्टाचार इसे प्राप्त करने का मार्ग है। नीतिशास्त्र मानव व्यवहार के सिद्धान्त की बात करता है, जबकि शिष्टाचार परिस्थिति विशेष में इन सिद्धांतों के अनुपालन की।

नैतिक, अनैतिक और निर्नैतिक क्रियाएँ : परम सुख की प्राप्ति के लिए विचारपूर्वक किया गया कर्म नैतिक कहा जाता है। कोई कर्म तभी नैतिक होता है जब यह स्वतन्त्रता से तथा लक्ष्य की प्राप्ति को ध्यान में रखकर किया जाता है। अनैतिक का तात्पर्य है 'ज्ञात नैतिक नियम विशेष के अनुपाल के बिना'। वे सभी कार्य जो नैतिक रूप से बुरे हैं। (कौटम्बिक व्यभिचार, मानव हत्या) आदि।

निर्नैतिक का तात्पर्य है शिष्टाचार से असंगत या असंबद्ध। हम कुछ निर्नैतिक क्रियाओं को चिन्हित कर सकते हैंः निर्जीवों अथवा घटनाओं के कृत्य (बाढ़, भुखमरी आदि)। ये उदासीन क्रियाएँ हैं और नैतिक परिक्षेत्र से बाहर हैं, प्रत्यावर्ती क्रियाएँः ये त्वरित और स्वचालित हैं (श्वसन), आकस्मिक कार्य, अबोध बच्चों या पागलों के कार्य, सम्मोहित होकर किया गया कार्य।

आदतन कृत्य : आदत से संचालित कृत्य या क्रिया नैतिक क्रिया कहलाती है क्योंकि आदत जानबूझकर डाली जाती है। नीतिशास्त्र में हम अनैतिक क्रियाओं की बात करते हैं न कि निर्नैतिक क्रियाओं की।

मानव कृत्य : किसी व्यक्ति द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इच्छापूर्वक किया गया कार्य मानव कृत्य है। नैतिकता मानवों की बात करती है न कि पशुओं की। प्रत्येक मानव कृत्य किसी लक्ष्य को दृष्टिगत कर किया जाता है, पूर्ण ज्ञान और स्वतंत्रता के साथ किया जाता है। नीतिशास्त्र इन मानव कृत्यों से संबंद्धित है, जो किसी लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होते हैं या रोकते हैं।

उद्देश्य/लक्ष्य : मानव क्रियाओं का लक्ष्य विभिन्न हो सकता है। ईश्वर में विश्वास रखने वाले के लिए परम सुख की प्राप्ति (ईश्वर और आनंदप्रद दृष्टि) लक्ष्य हो सकता है। ईश्वर ही मानव का अंतिम लक्ष्य है और वह मानव के सभी क्रियाओं में सम्मिलित है। आनंद में ज्ञान और ईश्वर प्रेम सन्निहित है। ईश्वर में विश्वास न रखने वालों के लिए मानवता का सुख होना ही लक्ष्य हो सकता है।

सही या गलत : नीतिशास्त्र को आचार के उचित या अनुचित के विज्ञान के रूप में परिभाषित करते हैं। किसी कार्य को क्या सही और गलत कार्य बनाता है? सही के लिये प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द राइट (right) है। राइट शब्द लैटिन के रेक्टस (rectus) से बना है, जिसका अर्थ है सीधा या मानदण्ड के अनुसार। एक कार्य तब नैतिक है जब यह नैतिक नियमों के अनुरूप है और तब नैतिक रूप से गलत है, जब वह नैतिक नियमों के अनुकूल नहीं है।

अच्छा और बुरा : 'अच्छा' शब्द मन और संकल्प की अभिवृत्ति दर्शाता है। कोई कार्य तब अच्छा है जब वह अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है, और तब बुरा है जब वह उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता। अच्छा शब्द को कुछ ऐसी चीज को संकेतित करने के

लिए प्रयोग करते हैं जो स्वयं में एक लक्ष्य हो। इस प्रकार समम बोनम (summum bonum) या परम ईश्वर का तात्पर्य है परमलक्ष्य, जिसे हम पाना चाहते हैं।

ऐच्छिक एवं अनैच्छिक क्रियाएँ : कोई क्रिया ऐच्छिक है जब वह किसी आंतरिक सिद्धान्त तथा ज्ञान के साथ की जाती है। कोई कार्य स्वतंत्र है जब यह स्वनिर्धारित कर्ता से उदभूत है। क्या सभी ऐच्छिक कार्य स्वतंत्र हैं? अधिकांश स्वैच्छिक कार्य स्वतंत्र होते हैं केवल ऐसे उच्च कृत्यों को छोड़कर जिनसे वह सर्वोच्च परमेश्वर को अपनाता है।

यदि ज्ञान या स्वतंत्र विकल्प का अस्तित्व का पूर्णतया ही अभाव है तब कार्य अनैच्छिक है। अनैच्छिक कार्य बिना किसी उद्देश्य के हो सकते हैं। यह ज्ञान के साथ परंतु बिना किसी इच्छा के लिए किये जाते हैं, जैसे, संज्ञा–शून्यता से निकलता हुआ व्यक्ति मूर्खतापूर्ण बात करता है परंतु वह इसे नियंत्रित करने में अक्षम होता है। पहला संवेगों पर बल देता है तथा दूसरा संवेगों के दबाव से चुनाव को मुक्त बनाता है।

1.13 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

अबेल्सन, रेजील एण्ड काय नील्सेन. ''एथिक्स, हिस्ट्री ऑफ'' इन *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी.* एडि. डोनाल्ड एम. बोर्चर्ट, 2006, 394–439.

बाम, आर्ची जे. *व्हाय बी मॉरल?.* न्यू देल्हीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 1980.

बीयुचौम्प, टॉम एल. *फिलॉसोफिकल एथिक्सः एन इन्ट्रॉडक्शन टू मॉरल फिलॉसोफी,* सेकेन्ड एडिशन. न्यू यॉर्कः मैकग्रा–हिल, 1991.

बैकविथ, फ्रांसिस जे. (एडि.). डू *द राइट थिंगः अ फिलॉसोफिकल डायलॉग आन द मॉरल एण्ड सोशल इस्सूज ऑफ अवर टाइम.* सडबरीः जोन्स एण्ड बर्टलेट पब्लिकेशंस, 1995.

बिलिंगटन, रे. लिविंग *फिलॉसोफी एन इंट्रॉडक्शन टू मॉरल थॉट,* सेकेन्ड एडिशन. लंदनः राउटलेज, 1993.

बांड, इ. जे. *एथिक्स एण्ड ह्यूमन वेल–बीइंग, एन इंट्रॉडक्शन टू मॉरल फिलॉसोफी.* माल्डेनः ब्लैकवेल पब्लिशर्स इन., 1996.

बॉस, जूडिथ ए. (एडि.). *पर्सपेक्टिव्स ऑन एथिक्स.* कैलीफोर्नियाः मेफील्ड पब्लिकेशन कंपनी, 1998.

फीजर, जेम्स. ''एथिक्स'' इन द इंटरनेट इनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी, http://www-utm-edu/research/iep/e/ethics-comऐक्सेस्ड ऑन 1 जुलाई, 2009.

फ्रैंकेना, बिलियम के. *एथिक्स,* सेकेन्ड एडिशन. न्यू देल्हीः प्रेंटिस–हॉल ऑफ इंडिया, 1989.

जेंसलर, हैरी जे. *एथिक्सः ए कंटेम्परेरी इंट्रॉडक्शन.* लंदनः राउटलेज, 1998.

हिल, वाल्टर एच. *एथिक्स ऑर मॉरल फिलॉसोफी.* न्यू देल्हीः अनमोल पब्लिकेशंस, 1999.

लैफोलेट, हग (एडि.). *द ब्लैकवेल गाइड टू एथिकल थ्योरी.* माल्डेनः ब्लैकवेल पब्लिशर्स इन., 2000.

मैकेइंटायर, अलासडायर. *अ शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ एथिक्सः हिस्ट्री ऑफ मॉरल फिलॉसोफी फ्रॉम होमटिक एज टू ट्वेन्टीएथ सेंचुरी,* सेकन्ड एडि. लंदनः राउटलेज, 1998.

मैकेन्जी, जॉन एस. *अ मैनुअल ऑफ एथिक्स.* केल्कट्टाः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1929.

नॉरमन, रिचर्ड. *द मॉरल फिलॉस्फर्सः एन इंट्रॉडक्शन टू एथिक्स,* सेकेन्ड एडि. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998.

ओराइजन, मार्क. *मॉरलिटी फॉर अवर टाइम. ट्रांसलेटेड बाय नेल्स चाले.* न्यू यॉर्कः इमेज बुक्स, 1968.

रशेल्स, जेम्स. *दि एलिमेन्टस ऑफ मॉरल फिलॉसोफी,* थर्ड एडि. बोस्टनः मैकग्रा–हिल कॉलेज, 1999.

सिजविक, हेनरी. *द मेथड्स ऑफ एथिक्स.* न्यू देल्हीः एस. बी. डब्ल्यू. पब्लिशर्स, 1993.

सिंगर, पीटर, (एडि.). *एथिक्स.* न्यू यॉर्कः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994.

1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) पश्चिमी दर्शन में नीतिशास्त्र मुख्यतया यूनान में विकसित हुआ। यूनानी दार्शनिक सुकरात प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने प्रथाओं और धारणाओं की तार्किक आलोचना हेतु लोगों को प्रेरित किया। रिपब्लिक से लेकर बाद के संवादों और उपदेशों तक में प्लेटो ने प्रकृति, ईश्वर और मानव के बारे में व्यवस्थित विचार प्रस्तुत किये जिससे लोगों ने अपने नैतिक सिद्धान्तों को निगमित किया। सभी यूनानी दार्शनिकों में महान, अरस्तू ने अपने नैतिक लेखों (जैसे कि यूडेमियन ऐथिक्स, द निकोमेकन एथिक्स और दि पॉलिटिक्स) द्वारा नीतिशास्त्र के आधारों को व्यवस्थित किया।

बोध प्रश्न II

1) नीतिशास्त्र में आगनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों पद्धतियाँ प्रयुक्त होती है। निगमन तार्किक बुद्धि द्वारा बिना किसी अनुभव के ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है। निगमनात्मक तर्क–वितर्क सार्वभौम या सामान्य सत्य से आरंभ होता है और किसी विशिष्ट बिंदु की ओर ले जाता है। न्यायवाक्य, जिसमें दो धारणाओं से अभीष्ट निष्कर्ष निकाला जाता है जैसे, सभी मानव नश्वर हैं, राम एक मानव है अतः राम नश्वर है, निगमनात्मक तर्क–वितर्क का शास्त्रीय रूप हैं आगमन अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। आगमन विशिष्ट से प्रारंभ होकर सामान्य या सार्वभौमिक की ओर बढ़ता है। उदाहरण के लिए, पानी चैन्नै में 100ºC पर उबलता है। पानी कोच्ची में 100ºC पर उबलता है। पानी मुम्बई में 100ºC पर खौलता है। अतः पानी 100ºC पर उबलता है।

2) नीतिशास्त्र के समग्र अध्ययन को सामान्य और विशेष नीतिशास्त्र में बाँट सकते हैं। विभिन्न सिद्धांतों को देखते हुए दार्शनिक इसे तीन मुख्य क्षेत्रों; अधि–नीतिशास्त्र, नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र, में विभाजित करते हैं। अधि–नीतिशास्त्र नैतिक संप्रयत्यों की उत्पत्ति और अर्थ की छानबीन करता है। नियामक नीतिशास्त्र सही और गलत आचारों के नियंत्रक मानदण्डों को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र विवादास्पद विषयों जैसे, गर्भपात, पर्यावरणीय समस्या, इत्यादि।

बोध प्रश्न III

1) आज किसी भी समय की तुलना में समाज को नीतिशास्त्र की प्रासंगिकता और आवश्यकता अधिक है। हम नीतिशास्त्र क्यों पढ़ें? इसके कम से कम तीन कारण हो सकते हैं। प्रथम, नैतिक दर्शन या नीतिशास्त्र जीवन के प्रश्न पर हमारे विचार और अधिक गहन कर सकता है। नीतिशास्त्र का अध्ययन व्यक्ति के अपने कर्मों, निर्णयों आदि के आत्मालोचन एवं मूल्यांकन में सहायक हो सकता है। दूसरे, नैतिक दर्शन का अध्ययन नैतिकता के बारे में अच्छी तरह सोचने में सहायता कर सकता है। निर्णय करते समय यह हमें हमारी नैतिक स्थिति स्पष्ट करने में सहायता कर सकता है। नैतिक दर्शन का अध्ययन हमारे चिन्तन की प्रक्रिया को और तीक्ष्ण बना सकता है। यह हमारे मस्तिष्क को तार्किक और बौद्धिक रूप से सोचने तथा नैतिक समस्याओं का अधिक स्पष्ट ढंग से समाधान के लिए प्रशिक्षित करता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 नैतिक कर्म*

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 परिभाषा

2.3 धार्मिक मत

- 2.3.1 हिन्दू
- 2.3.2 जैन
- 2.3.3 बौद्ध
- 2.3.4 इस्लाम
- 2.3.5 ईसाई

2.4 दार्शनिक मत

- 2.4.1 परिणाम सापेक्ष सिद्धान्त
- 2.4.2 परिणाम निरपेक्ष सिद्धान्त या कर्तव्यशाक्त
- 2.4.3 सद्गुण नीति–दर्शन

2.5 सारांश

2.6 कुंजी शब्द

2.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

यह इकाई :

- नैतिक कर्म का अर्थ प्रस्तुत करेगी,
- नैतिक कर्मों के दार्शनिक आपादनों की व्याख्या करेगी, और
- स्पष्ट करेगी कि नैतिक कृत्य और गैर–नैतिक कृत्य के मध्य क्या अन्तर है।

2.1 परिचय

मनुष्य होना दूसरों के साथ या दूसरों के बीच जीवनयापन करने को आपादित करता है। यह जन्म से ही देखा जाता है कि कोई अकेलेपन में जीना नहीं चाहता है। एक बच्चा जब महसूस करता है कि उसकी माँ आसपास नहीं है तो वह आपनी माँ की चाह रखता है। बच्चे की माँ की चाहत समाज में उपस्थित मनुष्यों के बीच के गूढ़ अनुबंध को प्रदर्शित करता है जो अनिश्चित काल से चला आ रहा है क्योंकि यह मनुष्य होने का अपरिहार्य लक्षण है। हम इस तथ्य को नकार नहीं सकते हैं कि हम समाज में जीवन यापन करते हैं। हम आपस में समान देश और समान समझ साझा करते हैं। समाज में जीवनयापन करने से हम आस्था, विश्वास, निष्ठा इत्यादि सरोकारों का अंतर्निवेशन करते हैं जो हमारे बीच एक अनुबन्ध निर्मित करते हैं। इन

* सुश्री लिजाश्री हजारिका, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. अमित कुमार प्रधान, सहायक प्राध्यापक, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली

सरोकारों पर या इन सरोकारों के लिए कार्य करना ही जीवन है। हम कुछ सुनिश्चित अनुग्रहों का किसी प्रकार पालन करने हेतु प्रशिक्षित हैं।

मनुष्य होना ही नैतिक रूप से दायित्वों से युक्त होना है क्योंकि नैतिकता एक वयस्क मनुष्य के रूप में हमारे जीवन की बुनियादी जरूरत है। परन्तु इस नैतिक बाध्यता या नैतिक दायित्व की प्रकृति के अन्वेषण का एक ही मार्ग है कि हम स्पष्ट करें कि नैतिकता क्या है? और हम किस प्रकार नैतिक बनें? यह प्रश्न सम्बन्धित प्रश्नों, यथा क्या हमारे सभी कर्म नैतिक माने जाते हैं या क्या किसी कर्म में कुछ सुनिश्चित तत्वों का होना उसे नैतिक बनाता है– यदि ऐसा है तो वे तत्व क्या हो सकते हैं?, हेतु कुछ नए आयामों का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः "नैतिक कर्म" का आशय क्या है अथवा एक विशिष्ट कर्म को कब नैतिक कर्म कहा जायेगा इसे समझने के लिए हमें "कर्म" तथा "नैतिक" जैसे पदों का स्वतन्त्र रूप से अन्वेषण करना पड़ेगा। इसके लिए पहले यह समझने और विश्लेषित करने का प्रयत्न करते हैं कि कर्म से क्या आशय है और तत्पश्चात किसी कर्म में अन्तर्निहित नैतिकता के अवयवों का अन्वेषण करेंगे। हालाँकि यह कहना कि सभी मानवीय कर्मों का नैतिक आयाम होता है, का आशय यह नहीं लेना चाहिए कि सभी कर्म सारभूत रूप से नैतिक होते हैं क्योंकि प्रत्येक प्रकार के कर्म में कुछ गहन नैतिक तत्त्व का हो, यह आवश्यक नहीं।

एक कर्ता द्वारा परिणाम प्राप्त करने हेतु गति उत्पन्न करना एक कर्म है। यह किसी घटना की भांति घटित नहीं होता है वरन उस क्रिया के कर्ता द्वारा किसी प्रयोजन के निमित्त उत्पन्न किया जाता है। प्रत्येक कर्म में एक कर्ता, एक प्रयोजन, संकल्प या अभिप्राय और परिणाम शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए 'जॉन ने गरीबों को दान दिया' एक कर्म है क्योंकि यह 'सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा में उदित होता है' की भांति घटित नहीं होता है। उपरोक्त उदाहरण में प्रथम वक्तव्य एक कर्म है क्योंकि जॉन ने गरीबों के मदद के प्रयोजन या संकल्प से कार्य किया और इसके साथ उसके मनस में एक लक्ष्य भी था–गरीबों को सुखी बनाना। दूसरा वक्तव्य एक बिना चूक के प्रतिदिन घटित होने वाली एक घटना है जो पृथ्वी के घूर्णन एवं समय की गणना के कारण होती है। सूर्योदय के पीछे कोई संकल्प या प्रयोजन नहीं है। जब कोई व्यक्ति किसी उद्देश्य, अभिप्राय या संकल्प से निर्देशित होता है तभी वह कर्म होता है क्योंकि तभी कोई व्यक्ति सक्रिय रूप से शामिल होता है और अपना लक्ष्य अर्जित करने के लिए उद्यम करता है। अनेक नीतिशास्त्रियों का मानना है कि अभिप्रेरक, संकल्प या अभिप्राय की अवधारणा कर्म का एक विशेष अवयव है। इस अवयव के आभाव में नैतिक उत्तरदायित्व एवं नैतिक स्वामित्व जैसी अनेक नैतिक अवधारणाए भी संभव नहीं हो सकती हैं। यह इस बात को आपादित नहीं करता कि हम मान लें कि सभी कर्म नैतिक हैं किन्तु इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता है कि किसी न किसी हद तक हमारे सभी कर्म मूल्यांकनात्मक होते हैं। हमारे कर्मों को मूल्यंकित करने का प्रयास उन्हें उचित, अनुचित, नैतिक, अनैतिक या निर्नैतिक कर्मों की कोटियों में श्रेणीबद्ध करने में प्रतिफलित होता है। एक कर्म का उचित या अनुचित श्रेणी में मूल्यांकन कर्ता के अभिप्राय अथवा प्रयोजन अथवा संकल्प के अन्वेषण करने से संभव होता है। कोई भी कर्म जो हमारे सयास संकल्प, अभिप्राय अथवा प्रयोजन से प्रवृत्त हो नैतिक कर्म होता है। जब यह प्रश्न पूछा जाए कि एक विशेष कर्म को कब नैतिक कर्म कहा जा सकता है? एक नैतिक कर्म हमारा स्वयं का कर्म होना चाहिए अर्थात् यह हमारे स्वतः संकल्प से उत्पन्न होना चाहिए। यदि हम दूसरों के निर्देशों का पालन करें तो ऐसे कर्मों में नैतिक सामग्री नहीं होगी। मानव इतिहास के आरम्भिक युग से

ही नैतिक कर्म एवं धार्मिक कर्म अनिवार्य रूप से संयुक्त रहे हैं। इस मामले में कर्म की नैतिकता का मूल्यांकन दुष्कर होता है क्योंकि हम उसके मनस की गहराइयों को भेद नहीं सकते हैं। कर्म में नैतिक मूल्य कैसे होता है इसे समझाने के लिए विभिन्न दार्शनिकों ने विभिन्न सिद्धान्त दिए हैं– परिणाम निरपेक्षता या कर्तव्यशास्त्र, परिणाम सापेक्षता या परम–उद्देश्यवाद तथा सद्‌गुण। यह इकाई यह समझने के लिए कि एक कर्म नैतिक कैसे होता है, इन सभी सिद्धान्तों की व्याख्या करेगी और नैतिक एवं अनैतिक कर्मों की संभावनाओं को प्रदशित करेगी।

2.2 परिभाषा

मॉरल पद लैटिन शब्द 'मोस' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है रिवाज या आदत। इससे यह निकाला जा सकता है कि जब कोई कर्म सायास निष्पादित किया जाता है तो हम उसका मूल्यांकन शुभ या अशुभ के रूप में कर सकते हैं और उसे नैतिक और अनैतिक कर्मों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

नैतिक कर्म से आशय उन कर्मों से है जो नैतिक प्रक्षेत्र में आते हैं और नैतिक निर्णयों की विषयवस्तु होते हैं। यह कर्म गैर–नैतिक कर्मों से सुभिन्न होते हैं जिनमें ना तो नैतिक गुण होते हैं और जो ना ही नैतिक निर्णयों के प्रक्षेत्र में आते हैं। बृहद अर्थ में नैतिक पद का आशय है नैतिक गुणों (उचित, अनुचित, शुभ, अशुभ) से युक्त होना अर्थात क्या उचित, अनुचित, शुभ और अशुभ है। और कर्म के निष्पादन का आशय है एक विवेकशील कर्ता के द्वारा निष्पादन। विवेकहीन आवेग या रुझानवश नहीं वरन ज्ञान तथा साधन एवं साध्य के स्वतन्त्र चयन के द्वारा। स्वतः प्रवृत कर्म नैतिक कर्म नहीं होते हैं क्योंकि स्वतः प्रवृत कर्म विशेषकर निम्न प्राणियों में पाए जाते हैं। स्वतः प्रवृत कर्म शुभ या अशुभ, उचित या अनुचित नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि पशु उचित एवं अनुचित का भेद नहीं कर सकते हैं और निर्नैतिक होते हैं। मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों के कर्म, बच्चों के कर्म, सम्मोहन के असर में किये गए कर्म तथा बाध्यताओं में किये गए कर्म निर्नैतिक कर्म होते हैं। कुछ दार्शनिकों के अनुसार प्रत्येक मानवीय कर्म शुभ नहीं होता है शुभेच्छा से किये गए कर्म ही शुभ होते हैं। इमैन्युएल काण्ट के अनुसार एक कर्म नैतिक कर्म तभी होता है जब वह शुभ संकल्प से किया जाए। एक शुभ संकल्प उपयोगी हो सकता है किन्तु यह अपनी उपयोगिता के कारण शुभ नहीं होता है। उपयोगिता के अभाव में इसका मूल्य प्रभावित नहीं होगा। नैतिक कर्म उपयोगितावश या श्रेष्ठता अर्जित करने के लिए नहीं किये जाते हैं। दो व्यक्तियों ने एक ही काम किया हो सकता है और उनमें से एक का काम नैतिक हो सकता है और दूसरे का अनैतिक। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति गरीबों को दयावश भोजन कराता है और दूसरा व्यक्ति रुतबा अर्जित करने के लिए अथवा किसी स्वार्थवश भोजन कराता है। हालाँकि कर्म समान है तथापि एक का कर्म नैतिक है और दूसरे का निर्नैतिक। जब हम शब्द 'नैतिक' का प्रयोग करते हैं तब उसका प्रयोग नैतिक शुभत्व के सम्बन्ध में होता है जो दर्शाता है कि हम चरित्र के शुभत्व को लक्षित कर रहे हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकतर दार्शनिक व्यक्ति की अभिप्रेरणाओं को एक कारक मानते हैं जो उसके कर्म को नैतिक रूप से शुभ या अशुभ बनाते हैं। उनमे से कुछ का स्पष्ट रूप से मानना है कि किसी कर्म की नैतिकता हेतु अभिप्रेरणा ही एकमात्र सार्थक कारक है। यह जाहिर है कि एक कर्म की नैतिकता हेतु अभिप्रेरणाएं महत्वपूर्ण हैं किन्तु अनिवार्य नहीं। यदि एक व्यक्तिनिर्धनों की सहायता के लिए धन खर्च करता है तब उसकी अभिप्रेरणा उसके कर्म को नैतिक रूप से शुभ बनाती है और हम उसे

नैतिक रूप से शुभ व्यक्ति के रूप में पहचानते हैं। परन्तु यदि वह मात्र इसलिए धन खर्च करता है कि वह इसे एक लाभप्रद निवेश मानता है तो उसका कर्म दूरदर्शी माना जायेगा परन्तु यह नैतिक रूप से प्रशंसनीय नहीं होगा। किन्तु एक कर्म के अभिप्राय एवं अभिप्रेरणा का विभेद विचार से नहीं किया जा सकता है वरन व्यवहार से ही संभव है। उदाहरण के लिए, यदि अ ब को मारने के उद्देश्य से उसकी कॉफी में जहर मिला देता है, उसका उद्देश्य ब की संपत्ति अर्जित करना हो सकता है। रमा ने सायास एक वृद्ध महिला की हत्या कर दी और अनायास अपनी माँ की हत्या कर दी, यदि उसने जानबूझ कर अपनी माँ की हत्या की तो हम उसके इस निन्दनीय कर्म का मूल्यांकन भिन्न प्रकार से करेंगे। कर्म नैतिक रूप से अशुभ तब भी हो सकते हैं जब उनके प्रयोजन शुभ हों। मान लीजिये एक व्यक्ति अ यह सोच कर कोई कार्य करता है कि वह ब को प्रसन्न करेगा हालाँकि वह यह जानता है कि उसके कर्म स तथा द को हानि पहुंचा सकता हैं। यहाँ अ मात्र ब से सरोकार रख रहा है और वह स तथा द से उदासीन है। इसलिए अ शुभ संकल्प से कार्य कर रहा था (वह ब को प्रसन्न करना चाह रहा था), किन्तु उसने जो किया वह अन्ततः नैतिक रूप से शुभ नहीं है। इसका कारण उसकी अभिप्रेरणा नहीं है वरन अन्य अभिप्रेरणाओं का अभाव है। उपरोक्त उदाहरण में कुछ अभिप्रेरणाओं का अभाव कर्म को अशुभ बना देता है अन्यथा वह कर्म शुभ होता। यह इस विचार को स्पष्ट करता है कि अनेक कर्म नैतिक रूप से अशुभ होते हैं भले ही उनके अभिप्रयोजन निन्दनीय ना हों। चोरी के इस मामले को लेते हैं। एक लड़के ने एक अमीर महिला के पर्स से 500 रूपये चुरा लिए किन्तु महिला ने भीड़ को चिल्ला कर बताया कि उसने उसके 2000 रूपये चुराये हैं। पकड़े जाने पर लड़के ने महिला को 500 रूपये वापस कर दिए। लड़के ने बताया कि 500 रूपये के अभाव में वह डॉक्टर से परामर्श लेने में असमर्थ है क्योंकि डॉक्टर ने बिना भुगतान लिए उसकी माँ का इलाज करने से मना कर दिया। इस मामले में लड़के का अभिप्रयोजन अपनी माँ का इलाज कराना और उसे कष्ट से मुक्ति दिलाना था परन्तु यह कर्म नैतिक रूप से अशुभ है क्योंकि वह दूसरे की संपत्ति के अतिक्रमण से ही कुछ अर्जित कर सकता था। वह इस ज्ञान से अभिप्रेरित नहीं हुआ था कि उसका यह कृत्य उस धनी महिला को हानि पहुँचायेगा। एक कर्म की नैतिकता मात्र उसके पीछे के संकल्प से निर्धारित नहीं होती है वरन अनायास कर्म भी निंदनीय हो सकते हैं। एक कर्म का शुभत्व इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति को जीवन पर्यन्त किस प्रकार प्रशिक्षत किया गया है। उदाहरण के तौर पर नन्हे बच्चों को सिखाया जाता है कि दूसरों को चोट ना पहुँचायें। आगे चलकर अनेक बच्चे नियमित रूप से कृपया और धन्यवाद बोलना आरम्भ कर देते हैं। यह पहले से योजनाबद्ध नहीं होता है वरन बाह्य प्रशिक्षण से अंतर्निविष्ट किया जाता है।

नैतिक कर्म को कर्म की अन्य प्रजातियों से क्या अलग करता है? हम कैसे जानते हैं कि हमारे द्वारा निष्पादित कर्म नैतिक कर्म हैं? सारभूत रूप से नैतिक कर्म नैतिक मूल्यों वाला कर्म होता है जिसमे नैतिक अनुक्रिया के दौरान व्यक्ति की नैतिक चेतना क्रिया में सम्मिलित होती है। नैतिक कर्म सिर्फ एक बार नहीं होता है वरन यह अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। यह कहा जा सकता है कि शुभ के चयन के द्वारा हम शुभ बनते हैं। सत्य बोलने का चयन कर के एक व्यक्ति ईमानदार बन सकता है जैसा कि उस लड़के का मामला जिसने 500 रूपये चुराये थे। हालांकि एक बार ईमानदारी का प्रदर्शन व्यक्ति को ईमानदार नहीं बनाता है उसे ईमानदार होने के लिए अनवरत ईमानदारी का चयन करना होगा। यह स्पष्ट और सूत्रबद्ध प्रतीत हो सकता है किन्तु नैतिक कर्म कहीं अधिक जटिल हो सकते हैं। अतः शुभ बनना 'बनने' के अर्थ

की भांति सतत संघर्ष समाहित करता है। प्रत्येक कर्म चिंतन एवं निर्णय लेने की मांग करता है और प्रत्येक नैतिक कर्म बौद्धिक विमर्श एवं मानवीयता के प्रतिज्ञापन की मांग करता है। नैतिक कर्म हमारे नैतिक आदर्शों पर अवलंबित होते हैं। हमारे नैतिक आदर्श इस विषय पर आधारित होते हैं कि मनुष्य के लिए सुयोग्य जीवन क्या निर्मित करता माना जाता है, यह नैतिक आदर्श पीढ़ियों का उत्पाद हैं जो परम्पराओं के द्वारा रूप लेते हैं और जो कर्मों के द्वारा सामने आते हैं। वह क्रियाकलाप जो शरीर की प्राकृतिक योजनाओं से उदभूत होते हैं, स्वतः प्रवृत क्रियाकलाप, विचारहीन गतिविधियों, आदतों एवं प्रत्यावर्ती क्रियाओं को नैतिक कर्म नहीं माना जाता है क्योंकि वह मानवीय कर्ता के नियंत्रण से बाहर होते हैं। इसी प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति द्वारा अज्ञानवश किये गए कार्य भी नैतिक कर्म के दायरे में नहीं आते हैं। नैतिक कर्म मानव के सयास संकल्प स्वातंत्र्य से उदभूत होते हैं। प्रत्येक मानवीय कर्म जो सोद्देश्य विवेक से उदभूत होता है उसे शुभ या अशुभ होना चाहिए। नैतिक कर्म वह कर्म है जो एक सचेत, बौद्धिक, एवं स्वतन्त्र मनुष्य से सम्बंधित होता है। आइये नैतिक क्रियाओं के महत्वपूर्ण अवयवों को चिन्हांकित करते हैं–:

1) नैतिक कर्म एक कर्ता के द्वारा ज्ञान या चेतना द्वारा सम्पादित होते हैं अर्थात अज्ञानवश किये गए कर्मों के विपरीत यह कर्म ऐच्छिक होते हैं। यहाँ ज्ञान, उस स्थिति का चरित्रगत लक्षणों को बताने वाले तथ्यों, उपस्थित विकल्पों एवं विकल्पों के सम्भावित परिणामों के ज्ञान के बारे में होता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति इस बात से अनभिज्ञ होते हुए कि उसका मित्र प्याज से एलर्जी रखता है, उसे प्याज का कटलेट परोस देता है अगर उसे मालूम होता उसकी एलर्जी के बारे में तो उसने कोई दूसरा कटलेट परोसा होता। इस मित्र द्वारा स्थिति की चिकित्सकीय नजरंदाजी नैतिक दायित्व को समाप्त कर देती है बशर्ते इस प्रकार की नजरंदाजी सुधारी ना जा सके।

2) नैतिक कर्म स्वतंत्रता को समाहित करते हैं।

   नैतिक कर्म वह कोई भी किया जाने वाला कार्य होता है कि किसी समाज में जहाँ कार्य सम्पादित होता है, वहाँ स्वीकार्य और शुभ मूल्यों वाला माना जाता है। हर समाज में कुछ मूल्य, कुछ बुनियादी नियम होते हैं जो शुभ एवं अशुभ का निर्धारण करते हैं। यह अनेक कारकों यथा इतिहास, संस्कृति, प्रभुत्वशाली धर्म, आर्थिक स्थितियों, शिक्षा के स्तर इत्यादि पर निर्भर करता है। समय के अनुसार मूल्य परिवर्तित होते रहते हैं। जिस समुदाय अथवा समाज में हम रहते हैं वह नैतिकता के मानक तय करता है। यह विभिन्न संस्कृतियों तथा प्रकृति एवं अन्य मनुष्यों की अनुक्रियाओं पर भी निर्भर करता है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक कर्म पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) नैतिक कर्म किस प्रकार निर्नैतिक कर्म से भिन्न हैं?

.....

.....

.....

.....

2.3 धार्मिक मत

धार्मिक अनुभव एक ढांचा उपलब्ध कराते हैं जिसका अंश नैतिक व्यवहार हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से एक नैतिक कर्म वह है जो मनुष्य को निरपेक्ष लक्ष्य अर्थात् चरम लक्ष्य अर्थात सर्वोच्च शुभ–ईश्वर तक पहुँचने में सहायक है। परिणामतः वे कर्म एक मनुष्य के लिए शुभ हैं जो उसे ईश्वर के निकट ले जाते हैं, जोकि मनुष्य के अस्तित्व का चरम साध्य है। हम हिन्दू ,बौद्ध, जैन, इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अनुसार नैतिक कर्मों की चर्चा करेंगे।

2.3.1 हिन्दू

नैतिक कर्म सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ भगवद्गीता में वर्णित एवं प्रस्तुत किया गया है। *गीता* का परमार्थ ईश्वर का साक्षात्कार है अथवा समाज का एकीकरण (लोकसंग्रह) है। उस चरम लक्ष्य के साक्षात्कार हेतु साधन वर्ण आश्रम, नित्य धर्म और नैमित्तिक धर्म इत्यादि के नाम से जाने जाते हैं। हिन्दू धर्म के आधारभूत दो सिद्धान्त हैं– धर्म एवं कर्म के सिद्धान्त जो नैतिक विचार एवं कर्म को समझाते हैं। *भगवद्गीता* का मुख्य उपदेश है निष्काम कर्म। इसका अर्थ अनासक्त कर्म नहीं है और ना ही किसी स्वार्थ सिद्धि की इच्छा के लिए कर्म ना करना, जैसा कि इसका अर्थ बताया जाता है, वरन लोकहित अथवा ईश्वर के साक्षात्कार हेतु कर्म करना है। इसका अर्थ है कि जब बिना किसी कामना, उद्देश्य अथवा परिणाम की चिंता के आवंटित कर्म किया जाता है तब वह मनस को शुद्ध करता है और उत्तरोत्तर व्यक्ति को विवेक के मूल्य और नैष्कर्म्य के महत्त्व को समझने हेतु योग्य बनाता है। ईश्वर कर्मों के परिणाम को नियंत्रित करता है परन्तु इस क्रम को समझ कर दैवीय कर्मों के गत्यात्मक निकाय का उपकरण बनने एवं ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण हेतु दृढ संकल्प से कर्म करना महत्वपूर्ण है। वास्तविक आत्म साक्षात्कार स्वसमर्पण में निहित है। हिन्दू धर्म में 'धर्म' एक व्यापक पद है। इसका आशय धर्म, विधि, कर्तव्य, क्रम, नैतिकता, न्याय आदि हो सकता है। धर्म हिन्दू नैतिकता का आधारभूत सिद्धान्त है। कर्तव्य का पालन करना सारभूत रूप से उचित कर्म करना है, उचित क्या है यह निर्माणक सामग्री से निर्धारित होता है जिसमे कर्म किया जाता है और बताया जाता है कि कौन कर्म कर रहा है। इस सन्दर्भ में कर्म धर्म से घनिष्ठ रूप से संयोजित है। सकारात्मक कर्मों के सकारात्मक परिणाम होते हैं और नकारात्मक कर्मों से नकारात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं। धर्म के अनुसार कर्म करना सकारात्मक रूप से कर्म का पालन करना है। जब एक व्यक्ति धर्म का पालन करता है तभी वह सकारात्मक कर्म उत्पन्न करता है।

2.3.2 जैन

जैन मत आत्म उद्यम की अनिवार्यता पर जोर देता है ताकि आत्मा मोक्ष एवं दैवीय चेतना की तरफ द्रवित हो सके। किसी भी जीव को अपने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय

प्राप्त करने हेतु पांच नैतिक सिद्धान्तों का पालन करने की अनुशंसा की गई है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। जैन मत की मुख्य शिक्षा यह है कि प्रत्येक जीव यहाँ या इसके बाद अपने जीवन का निर्माता होता है। बौद्धों एवं हिन्दुओं की भांति जैनी भी विश्वास करते हैं कि शुभ आचरण जीवन में बेहतर अवस्थाओं की तरफ अग्रसर करते हैं और दुराचरण बदतर अवस्थाओं की तरफ अग्रसर करते हैं। जैन मत का मानना है कि त्रिरत्न (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र) उचित कर्म के साक्षात्कार का मार्ग उपलब्ध करते हैं। चूंकि वह कर्म को पौद्गलिक (पूरयन्ति गलन्ति च; जो बनता और बिगड़ता है) मानते हैं जो जीव को शरीर से बद्ध करता है अतः शुभ एवं अशुभ कर्म दोनों शरीर के पुनर्जन्म की तरफ ले जाते हैं। कोई भी कर्म मनुष्य को पुनर्जन्म से मुक्ति दिलाने में सहायता नहीं कर सकता है। जैन मत के अनुसार नैतिक जीवन वह है जो सभी सांसारिक चीजों के बन्धनों, जिनमे ऐन्द्रिक सुख भी सम्मिलित हैं, से मुक्त हो। यह व्यक्ति के स्वविवेक और आत्म नियंत्रण द्वारा आध्यात्मिक विकास को प्रोत्साहित करता है।

2.3.3 बौद्ध

बौद्ध धर्म में नैतिक कर्म वह है जो दुःख से मुक्त हो क्योंकि यह जीवन की पवित्रता पर बहुत जोर देता है। बौद्ध धर्म में चार आर्यसत्य नैतिक चिंतन एवं कर्म के नियामक सिद्धान्त हैं, विशेषकर जैसा कि अष्टांगिक मार्ग में बताया गया है। आर्य सत्यों के पालन का उद्देश्य शुभ होना नहीं है वरन उस चरम लक्ष्य तक पहुंचना है जिसे बौद्ध बोधि कहते हैं। अष्टांगिक मार्ग उचित या स्वीकार्य व्यवहार हेतु नियमों का एक समूह है। आरंभिक बोध सभी सजीव प्राणियों के प्रति अहिंसा है। अष्टांगिक मार्ग के आठ अंगो को बहुधा तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता हैः प्रज्ञा, शील और समाधि। प्रज्ञा के अन्तर्गत दो अंग हैं– (1) सम्यक् दृष्टि, और (2) सम्यक् संकल्प । शील के अन्तर्गत तीन अंग हैं– (3) सम्यक् वचन(4) सम्यक् कर्म (5) सम्यक् आजीविका। समाधि के अन्तर्गत हैं– (6) सम्यक् व्यायाम (7) सम्यक् स्मृति (8) सम्यक् समाधि। यह अष्टांगिक मार्ग आरम्भिक रूप से साधक को बुद्धत्व के चरम लक्ष्य की तरफ अग्रसर करते हैं,जो व्यवहार के भी निदेशक सिद्धान्त हैं। यह कभी भी अंधविश्वास की मांग नहीं करता है, यह कभी भी आत्म–अन्वेषण की प्रक्रिया सिखाने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता है। बौद्ध धर्म में नैतिक कर्म वह है जो सम्मान, उदारता, आत्म नियंत्रण, ईमानदारी और करुणा समाहित करता है।

2.3.4 इस्लाम

इस्लामिक नैतिक चिंतन का आरम्भ इस आधार वाक्य से होता है कि मानव जीवन में सर्वाधिक आधारभूत सम्बन्ध ईश्वर के साथ सम्बन्ध है। इस्लाम के लिए नैतिक कर्म वह है जो इन पांच श्रेणियों से व्युत्पन्न होता हैः विधि (बाध्यकारी), निषिद्ध, आवश्यकता से अधिक, अरुचिकर और उदासीन। मुस्लिम जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयामों में से एक है उच्च नैतिक मानक रखना। इस्लाम का दृष्टिकोण है कि ब्रह्माण्ड ईश्वर की रचना है और सब कुछ उसके अधीन कार्यरत है। सामान्य धारणाओं के विपरीत कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से अशुभ होता है इस्लाम की मान्यता है कि मनुष्य नैतिक रूप से शुभ प्रकृति के साथ पैदा होता है जो आस्था एवं नैतिक मूल्यों पर प्रतिक्रिया देता है। कालक्रम में यह लालच और मनुष्य की कामनाओं पर नियंत्रण रखने की असमर्थता के कारण भ्रष्ट हो सकता है। इस्लाम के अनुसार मनुष्य के व्यवहार के नैतिक होने के लिए दो शर्तें हैं जिनका पूरा होना जरुरी हैः एक व्यक्ति

का इरादा शुभ होना चाहिए और उसके कर्म ईश्वरीय निर्देशों के अनुरूप होने चाहिए। उदाहरण के लिए यदि नेक इरादे से बुरे कर्म किये गए हों और वह अन्ततोगत्वा वह शुभ परिणाम उत्पन्न करते है तब भी उसे नैतिक नहीं कहा जा सकता है। यदि प्रारंभ में इरादे नेक ना रहे हों और परिणाम आकस्मिक रूप से शुभ हों तो नैतिक व्यवहार का सवाल ही नहीं उठता है। नेक इरादे और नेक कर्म सहगामी होने चाहिए।

2.3.5 ईसाई

ईसाई धर्म के अनुसार जीवन ईश्वर की आराधना होना चाहिए जो ना केवल अनुष्ठानों एवं प्रार्थनाओं में दृष्टिगोचर हो वरन ईसाई अनुयायी के जीवन में भी परिलक्षित हो। एक नैतिक जीवनयापन के प्रयास में ईसाई, ईश्वर द्वारा समादेशित और *बाइबिल* में विहित आचरण के नियमों का पालन करने का प्रयास करते हैं। ईसाइयत के अनुसार नैतिकता ईश्वर से व्युत्पन्न है और चूंकि ईश्वर दयालु है अतः उसके निर्देश नैतिक रूप से शुभ हैं। ईश्वर वह मानक है जिसका हमें सन्दर्भ लेना है। नैतिक कर्मों का पालन अपने पापों का स्वीकरण है क्योंकि ऐसी स्वीकारोक्ति ईश्वर की इच्छा एवं प्रेम का स्वीकरण होती है। कर्म नैतिक रूप से शुभ होते हैं क्योंकि ईश्वर उनका निर्देश देता है और ईश्वर जिनका निर्देश देता है वह नैतिक रूप से शुभ है क्योंकि वह ईश्वर के निर्देश हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) बौद्ध एवं जैन धर्म के नैतिक कर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए?

.....

.....

.....

.....

2.4 दार्शनिक मत

नैतिक कर्म के विषय में विभिन्न दार्शनिकों के द्वारा दिए गए विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों से दार्शनिक मत व्याख्यित किये गए। यह इकाई यह समझाने का प्रयास करेगी कि विभिन्न नैतिक सिद्धान्तकार यह समझने का प्रयास करते हैं कि एक नैतिक कर्म क्या है? एक नैतिक सिद्धान्त का चरम लक्ष्य नैतिक या निर्नैतिक जैसे विभिन्न कर्मों से सम्बंधित निर्णय लेने हेतु दिशानिर्देश प्रदान करना होता है। नैतिक सिद्धान्तों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में विभक्त किया गया हैः परिणाम सापेक्ष सिद्धान्त या परम उद्देश्यवाद, परिणाम निरपेक्ष सिद्धान्त या कर्तव्यशास्त्र तथा सद्गुण सिद्धान्त। इन सभी नैतिक सिद्धान्तों ने अपने नैतिक मानक भिन्न भिन्न दृष्टीकोण से प्रस्तुत किया है। इन सिद्धान्तों पर उनके कर्म सिद्धान्त के अनुसार अलग अलग विचार करते हैं।

2.4.1 परिणाम सापेक्ष सिद्धान्त

अंग्रेजी भाषा का शब्द *टिलियोलोजी* (teleology) ग्रीक शब्द *टिलोस* (telos) से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है लक्ष्य या प्रयोजन। टिलियोलोजी (teleology)

लक्ष्य, साध्य एवं प्रयोजन का अध्ययन है। एक नैतिक सिद्धान्त यदि एक उचित कर्म को सुखद हालत लाने के पदों में परिभाषित या व्याख्यित करता है तब उसको परिणाम सापेक्ष सिद्धान्त माना जाता है। यह नैतिक शुभत्व को हमारे व्यवहारों के परिणामों में स्थापित करता है ना कि स्वयं व्यवहार में। दूसरे शब्दों में एक कर्म नैतिक रूप से उचित या शुभ होगा यदि उस कर्म के परिणाम प्रतिकूल होने के बजाय अनुकूल हों। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्तकारों के अनुसार जो नैतिक रूप से उचित, शुभ या बाध्यकारी है वह शुभ परिणाम उत्पन्न करता है। कुछ भी स्वाभाविक रूप से शुभ या अशुभ नहीं है। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त सुख आनन्द तथा व्यक्ति के शुभ जैसे चिंतनशील कामनाओं पर आधारित हैं। व्यक्ति की यह विचारात्मक कामनाएं साध्य हैं और कर्मों को नैतिक पर्यालोचन का केन्द्रबिंदु होना चाहिए। कर्म का उचित या अनुचित होना उसके परिणामों के शुभत्व और अशुभत्व पर निर्भर करता है। परिणाम सापेक्षवादी नैतिक सिद्धान्त के अनुसार सभी बौद्धिक मानवीय कर्म इस अर्थ में परिणामसापेक्ष होती हैं कि हम कुछ सुनिश्चित साध्यों को अर्जित करने हेतु साधनों के विषय में चिंतन करते हैं। उदाहरण के लिए झूठ बोलने अथवा किसी को जानबूझ कर हानि पहुँचाने का अनुचित होना इस बात पर निर्भर करता है कि यह कर्म शुभ परिणाम देते हैं अथवा अशुभ परिणाम। एक झूठ यदि कष्ट की रोकथाम करता है तब परिणामसापेक्षवादी सिद्धान्तकार हेतु वह उचित कर्म है। नैतिक व्यवहार लक्ष्योन्मुख होता है अतः परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से मानव व्यवहार स्वयं में ना तो उचित होता है और ना ही अनुचित। हालाँकि परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से अभिप्रेरणाओं का कर्म के उचित या अनुचित होने से कोई सरोकार नहीं है। जो मायने रखता है वह यह कि दिये गए सन्दर्भ में उन कर्मों का परिणाम क्या होगा। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्तों को मानवीय व्यवहार के परिणामों को शुभ/अशुभ, उचित/अनुचित तथा नैतिक/अनैतिक के बुनियादी अवधारणाओं से संयोजित करना पड़ेगा। अधिकतर परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्तों की विशिष्टता यह है कि वह इन नैतिक प्रत्ययों को सुख या दुःख से तदात्मीकरण करते हैं। अतः नैतिक कर्म शुभ, उचित या नैतिक हैं जब वह सुखद परिणामों की तरफ अग्रसर करते हैं और नैतिक कर्म अशुभ, अनुचित या अनैतिक हैं जब वह दुखद परिणामों की तरफ अग्रसर करते हैं। तीन प्रकार के परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त हैं –

2.4.1.1 नैतिक स्वार्थवाद (Ethical egoism)

इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्म नैतिक रूप से उपयुक्त है यदि उस कर्म के परिणाम नैतिक कर्ता मात्र हेतु हानिप्रद होने से कहीं अधिक लाभप्रद हैं। एपिक्युरियस, हॉब्स, नीत्से एवं एडम स्मिथ इस सिद्धान्त के समर्थक हैं।

2.4.1.2 नैतिक परार्थवाद (Ethical Altruism)

इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्म नैतिक रूप से उचित है यदि उस कर्म के परिणाम नैतिक कर्ता के अतिरिक्त अन्य सभी हेतु हानिप्रद होने से कहीं अधिक लाभप्रद हैं। नैतिक परार्थवाद एक व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत परियोजनाओं का त्याग करने एवं दूसरों को समर्पित करने के लिए हेतु प्रेरित करता है ताकि इसे एक कर्म के सर्वाधिक लाभप्रद कारण के रूप में संसाधित किया जा सके।

2.4.1.3 नैतिक उपयोगितावाद (Ethical Utilitarianism)

इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्म नैतिक रूप से उचित है यदि उस कर्म के परिणाम सभी हेतु हानिप्रद होने से कहीं अधिक लाभप्रद हैं। शास्त्रीय या नैतिक उपयोगितावाद

उन प्रमुख सिद्धान्तों में से एक है जो परिणाम सापेक्षवादी नीतिशास्त्र के शीर्षक के अन्तर्गत लाये गए। इसे पुनः दो हिस्सों में विभाजित किया गया है– मूल्य सिद्धान्त तथा कर्म सिद्धान्त। प्रथमतः यह मूल्य सिद्धान्त के रूप में सुखवाद का समर्थन करता है। सुखवाद का अर्थ है कि सुख या आनन्द जीवन का चरम साध्य है। दूसरे यह कर्म सिद्धान्त के रूप में परिणाम सापेक्षवाद का समर्थन करता है। जेरमी बेन्थम और जे. एस. मिल इस सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक हैं। उन्होंने अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख के कर्म के शुभत्व या अशुभत्व का मानक होने का विचार विकसित किया। मिल ने उपयोगिता सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे वह आधारभूत नैतिक सिद्धान्त मानते हैं। उपयोगिता सिद्धान्त से उनका तात्पर्य उस सिद्धान्त से है जो प्रत्येक कर्म को अनुमोदित या अस्वीकृत करता है, उस प्रवृत्ति के अनुसार जो आकृष्ट पक्ष की खुशी को बढ़ाने या खारिज करने के लिए प्रकट होती है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक कर्मों के विषय में परिणाम सापेक्ष सिद्धान्तों ने क्या युक्तियाँ दीं हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2.4.2 परिणाम निरपेक्ष सिद्धान्त या कर्तव्यशास्त्र

परिणाम निरपेक्षवादियों के लिए एक नैतिक कर्म सारभूत रूप से नियमों के एक समुच्चय का पालन करने के बारे में है, जो कुछ कर्मों को निषिद्ध मानते हैं या कुछ कर्मों को आवश्यक मानते हैं। ये नियम प्रश्नाधीन नियम के विषय में उचित या अनुचित कार्यों को निर्दिष्ट करते हैं। डीआंटोलॉजी (deontology) शब्द ग्रीक शब्द डियोन (deon) और लोगोस (logos) से लिया गया है जिसका अर्थ है कर्तव्य और अध्ययन, इसलिए डीआंटोलॉजी कर्तव्य का अध्ययन है। डीआन्टोलॉजिकल सिद्धान्तकारों का मानना है कि नैतिक शुभत्व का आनंद, खुशी और परिणाम उत्पन्न करने से कोई लेना–देना नहीं है। किसी कर्मका अनुचित होना आंतरिक होता है या उस तरह के कर्मों में निहित होता है जो परिणाम निरपेक्ष होते हैं। परिणाम निरपेक्षवादी उचित या अनुचित कर्मों को नैतिक नियमों की आज्ञाकारिता या अवज्ञा के साथ समीकृत करते हैं। उनका मानना है कि उचित या अनुचित कुछ प्रकार के कर्मों में अन्तर्भूत होते हैं। वे आचरण के निश्चित सिद्धांतों के साथ एक कर्म की शुद्धता और अशुद्धता की पहचान करते हैं। यह एक कर्म की नैतिकता का मूल्यांकन उस कर्म में अंतर्विष्ट आंतरिक मूल्य के आधार पर करता है। परिणाम निरपेक्षवादी नैतिकता के अनुसार कर्ता गलत विकल्प नहीं चुन सकते हैं और अगर करता भी है तो नियम बना कर ऐसे त्रुटिपूर्ण चयन न्यूनतम किये जा सकते हैं। परिणाम निरपेक्षवादी विचारकों हेतु नैतिक मानक से अनुरूपता चयन को उचित बनाती है। प्रत्येक नैतिक कर्ता द्वारा ऐसे नैतिक मानकों का अनुपालन होना चाहिए। इस अर्थ में परिणाम निरपेक्षवादी विचारकों हेतु

उचित होना, शुभ होने से ज्येष्ठता रखता है। कुछ कर्म भले ही शुभ परिणाम उत्पन्न ना करें तब भी उचित होते हैं क्योंकि ऐसे कर्मों का उचित होना कुछ मानकों पर निर्भर करता है। परिणाम निरपेक्षवादी सिद्धान्त अपनी परिभाषा के अनुसार कर्तव्य पर आधारित हैं। कहने का आशय है कि नैतिकता नैतिक अनुग्रहों एवं कर्तव्यों के पालन में निहित है। पुनः कर्तव्य निरपेक्ष नैतिक नियमों के पालन से जुड़े हुए हैं। मनुष्य को नियमों को कायम रखने के लिए कुछ सुनिश्चित कर्म करने पड़ते हैं। नैतिक नियमों का शुभत्व अथवा अशुभत्व परिणामों अथवा सुख से स्वतन्त्र रूप से निर्धारित होता है।

इमानुएल काण्ट का सिद्धान्त संभवतः परिणाम निरपेक्षवादी दृष्टिकोण का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है। काण्ट के लिए, एक कर्म का नैतिक मूल्य तब और केवल तब हो सकता है जब यह कर्तव्य भाव से किया जाता है। कर्तव्य भाव से कर्म करने की उनकी धारणा की मानक समझ यह है कि नैतिक नियम के अनुसार उचित कर्म करना। एक कर्म नैतिक रूप से अनुमन्य है या नहीं यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह नैतिक नियम अर्थात् निरपेक्ष आदेश के अनुरूप है या नहीं। निरपेक्ष आदेश शर्तरहित आदेश हैं। इसके तीन अलग–अलग निरूपण हैं:

1) पहला सूत्रीकरण– केवल उस नियम के आधार पर आचरण करो, जिसको एक सार्वभौमिक नियम के रूप में स्वीकार करने का संकल्प कर सको।
2) दूसरा सूत्रीकरण– इस प्रकार कार्य करो कि स्वयं तुममें और दूसरे व्यक्ति में निहित मानवता एक साधन मात्र न रह कर सदैव अपने आप में साध्य बनी रहे।
3) तीसरा सूत्रीकरण– प्रत्येक बौद्धिक प्राणी को इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि वह इस सूत्र के माध्यम से अपने आप को साध्यों के राज्य का नियम विधायक सदस्य समझ सके।

हमारे कर्तव्यों को इस निरपेक्ष आदेश के सम्मान के सन्दर्भ में समझा जाना चाहिए। कान्ट का मानना था कि आदेश को सापेक्ष नहीं होना चाहिए क्योंकि यह व्यक्ति के संकल्प से बाहर स्थित किसी साध्य से व्युत्पन्न नहीं हो सकता है। निरपेक्ष आदेश किन्ही बाह्य साध्यों के विषय में नहीं होता है वरन स्वयं संकल्प की दिशा में होता है। एक जिम्मेदार कर्ता बनने की लिए मनुष्य की पहुँच नैतिक सत्य तक होनी चाहिए। पुस्तक *ग्राउंडवर्क ऑफ दि मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स* में कान्ट का तर्क है कि नैतिक कर्म वह है जो नैतिक नियम के लिए किया जाता है। नैतिक नियम में कोई विशिष्ट सामग्री नहीं होती है अतः यह नहीं बता सकता है कि हमारे कर्मों में क्या अवयव निहित होने चाहिए वरन यह मात्र हमें निर्देशित कर सकता है। उदाहरण के लिए हम अपने वचन का पालन करने हेतु बाध्य हैं तब भी जब वचन पालन के परिणाम कम शुभ हों। काण्ट का मानना था कि नैतिकता प्रागानुभविक (अनुभव से पूर्व या अनुभव–निरपेक्ष) होती है और नैतिकता के अन्वेषण के लिए हमें व्यावहारिक बुद्धि का अवलोकन करना चाहिए। उनके अनुसार आरम्भ में विवेक ही हमें नैतिकता हेतु समर्थ बनाता है। कोई भी आचरण जो बुद्धि पर आश्रित ना होकर भावनाओं पर अवलम्बित हो उसे सही अर्थों में सद्गुण युक्त नहीं कहा जा सकता है। काण्ट के नीति–दर्शन का आदेश है कि कर्म के समय सिर्फ उचित आचरण का क्रियान्वयन ही आवश्यक नहीं है वरन मनोभावों का उचित होना भी जरुरी है। उनके लिए एक कर्म नैतिक रूप से शुभ है यदि वह एक व्यक्तिनिष्ठ सिद्धान्त से प्रवृत्त हुआ हो जिसे एक सार्वभौमिक नियम बनाया जा सकता हो। मिल के विपरीत काण्ट का मानना था कि कुछ प्रकार

के कर्म (हत्या, चोरी और झूठ बोलना) निषिद्ध हैं भले ही वह अन्य विकल्पों के मुकाबले अधिक सुख लाते हों।

बोध प्रश्न IV

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) इमानुएल काण्ट के अनुसार, नैतिक कर्म क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2.4.3 सद्‌गुण नीति–दर्शन

सद्‌गुण नैतिकतावादियों के लिए, कोई कर्म नैतिक या पुण्य है अगर यह व्यावहारिक विचार–विमर्श के माध्यम से किया जाता है ना कि अज्ञानतावश। नैतिकता व्यक्ति के कर्मों का प्रतिबिंब होने के बजायव्यक्ति की पहचान या चरित्र से उपजी है। अरस्तू सदाचार नैतिकता की प्रेरणा का मुख्य स्रोत रहा है। अपने *निकोमेकियन एथिक्स* में, उन्होंने आग्रह किया कि एक मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट आदर्श परम आनन्द (यूडाइमोनिया) है जो सद्‌गुणों या उत्कृष्टताओं के अभ्यास पर आधारित है। वह कहते हैं कि सद्‌गुणों के अभ्यास के अलावा जीवन में कुछ भी नहीं है। यह एक अवधारणा है जिसे स्टोइक ने भी प्रोत्साहित किया है। सदाचार नैतिकता कान्ट द्वारा निर्धारित नियमों के बजाय नैतिक व्यवहार के लिए एक नैतिक कर्ता के चरित्र को संचालक शक्ति के रूप में बताती है। सद्‌गुण नैतिकतावादी सद्‌गुणों के बारे में उचित कर्म को परिभाषित करते हैं, बजाय कर्म के विषय में सद्‌गुणों को परिभाषित करने के।

सद्‌गुण मूल्यांकन का प्राथमिक विधि है नाकि कर्म जो उचित या अनुचित के रूप में मूल्यांकित होता है। सद्‌गुण या पुण्य वह आदत या गुण है जो वाहक को उसके या उसके उद्देश्य के प्रत सफल होने की अनुमति देता है। उदाहरण के लिए, चाकू का सद्‌गुण तीक्ष्णता है और रेस के घोड़े के लिए सद्‌गुण गति है। इस प्रकार, मानव के लिए सद्‌गुणों की पहचान करने के लिए, किसी व्यक्ति के पास मानव उद्देश्य क्या है, इसका लेखा–जोखा होना चाहिए। अरस्तू के अनुसार, सद्‌गुण को एक गुण के रूप में देखा जाता है जो यूडाइमोनिया या कल्याण की ओर जाता है। उन्होंने सदाचार को नैतिक और बौद्धिक सद्‌गुण के रूप में वर्गीकृत किया।

हालांकि, एक सद्‌गुण नैतिकतावादी किसी विशेष उदाहरण में झूठ बोलने पर कम ध्यान केंद्रित करता है और इसके बजाय व्यक्ति के चरित्र और नैतिक व्यवहार के बारे में– एक झूठ को बताने या झूठ को न बताने के निर्णय पर, विचार करता है। यह मानक कृत्यों के संग्रह को संदर्भित करता है जो करने के बजाय होने पर जोर देता है। एक सद्‌गुण नैतिकतावादी दार्शनिक उन सदगुणों की पहचान करेगा, वांछित विशेषताओं की पहचान, जो कि एक नैतिक या सदाचारी व्यक्ति धारण करता है।

इन सदगुणों को धारण करना एक व्यक्ति को नैतिक बनाता है और एक व्यक्ति की क्रियाएं उसकी आंतरिक नैतिकता का एक प्रतिबिंब मात्र है। एक कर्म को नैतिकता के सीमांकन के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि एक पुण्य कर्म में कर्म के एक साधारण चयन से कहीं अधिक शामिल है। इसके बजाय, यह होने के तरीके के बारे में है जो पुण्य का प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति के प्रत्येक स्थिति में लगातार एक निश्चित पुण्य चयन करने का कारण होगा। कर्ता सद्गुण का चयन करता है और पुण्य कार्य करने का चयन करता है लेकिन सद्गुणी कार्य को चुनने में कर्ता व्यावहारिक ज्ञान, वह क्या कर रहा है और क्यों अच्छा है, का ज्ञान प्रदर्शित करता है। यह आपादित करता है कि सद्गुणी कर्ता अज्ञानता से कार्य नहीं कर सकता है। अन्यथा, वह वास्तव में चयन नहीं होगा और व्यावहारिक ज्ञान का प्रदर्शन नहीं करेगा। उदाहरण के लिए, दो व्यक्ति हैं कार्ब और बार्ब– कार्ब एक स्वाभाविक रूप से अच्छा व्यक्ति है, जो दूसरों की मदद करने में आनंद लेता है– वह बहुत कुशाग्र नहीं है, लेकिन उसकी प्रकृति ऐसी है कि दयालुता के कारण वह लोगों की मदद करता है। उसकी इस दयालुता को उत्पन्न नहीं किया गया है; यह उसके व्यक्तित्व, उसके मूल स्वभाव का एक हिस्सा मात्र है। दूसरी ओर, बार्ब भी एक दयालु व्यक्ति है, लेकिन एक ऐसा व्यक्ति जिसने अच्छी आदतें विकसित करके ऐसा किया है। वह अच्छा है क्योंकि उसने ऐसा होना चुना है; उसने तर्कसंगत रूप से और प्रभावी रूप से सद्गुण का समर्थन किया और सदाचारी होने के लिए एक मार्ग व्यवस्थित किया है। अच्छे माता–पिता के द्वारा अच्छे संस्कारों को पैदा करने में उसको मदद मिली हो सकती है, लेकिन फिर भी, बड़े होने पर यह चुनाव उसका था। वह तर्कसंगत रूप से अपने चरित्र पर विचार करने और क्या सुधार करना है और किसका समर्थन करना है, के बारे में निर्णय लेने में सक्षम थी। अरस्तू के दृष्टिकोण के अनुसार, कार्ब एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास प्राकृतिक अच्छाई है लेकिन सच्चा सद्गुण नहीं है। दूसरी ओर, बार्ब के पास एक वास्तविक सद्गुण है क्योंकि उसने सद्गुण चुना हैः उसने व्यावहारिक ज्ञान प्रदर्शित किया। कार्ब ने ऐसा नहीं किया है और इसलिए उसका शुभत्व एक तरह से आकस्मिक है क्योंकि यह एक प्रकार की नासमझ प्रवृत्ति से संचालित हो रहा है। अरस्तू के लिए, एक गुणी व्यक्ति वह व्यक्ति है जो सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करता है– उसकी इच्छाओं और भावनाओं तथा जो वह उचित जानता है के बीच संघर्ष नहीं होता है।

डेविड ह्यूम ने भी सदाचार नैतिकता के विषय पर लिखा। वह गुणों को मानसिक गुणों के रूप में देखते हैं, सुखदायक के रूप में देखते हैंः वे सुखद होते हैं क्योंकि वे कुछ मामलों में सामाजिक उपयोगिता के अनुकूल होते हैं। इस प्रकार, वह सद्गुण पर कोई भारी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं नहीं आरोपित करते हैं। सद्गुणी होने का अर्थ है कि एक सुखदायक गुण से युक्त होना। सद्गुणी व्यक्ति को ज्ञान या बुद्धिमत्ता रखने की आवश्यकता नहीं है, विचार स्वयं बौद्धिक गुणों के रूप में गिना जाएगा क्योंकि वे सुखदायक और उपयोगी गुण हैं। ह्यूम का मत मानव प्रकृति के एक निश्चित दृ ष्टिकोण पर निर्भर करता है। हम ऐसे प्राणी हैं जो दूसरों के लिए सहानुभूति की भावनाओं से प्रवृत होतें हैं और इसके साथ–साथ खुद के लिए भी सरोकार रखते है। उनका मानना था कि लोग स्वार्थ से प्रेरित होते हैं लेकिन वे दूसरों के लिए प्यार और सहानुभूति से भी प्रेरित होते हैं। यह सहानुभूति नैतिकता का आधार बनती है। दूसरे का दर्द बुरा है, और जब मैं यह देखता हूं, तो मैं उस व्यक्ति के प्रति सहानुभूतिपूर्वक प्रतिक्रिया करता हूं। उदाहरण के लिए, मैं शायद किसी व्यक्ति के लिए दया महसूस करूंगा अगर मैं उसे प्रताड़ित होते हुए देखूंगा। उन्होंने कहा कि जब हम नैतिक

मूल्यांकन करते हैं तो हम जिस चीज के बारे में सबसे ज्यादा चिंतित होते हैं, वह हैं अभिप्रेरणा। नैतिक मूल्यांकन का प्राथमिक फोकस आंतरिक अवस्थाएं हैं, सद्गुण युक्त कर्ता या सदूचरित्रयुक्त कर्ता।

बोध प्रश्न V

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) डेविड ह्यूम के अनुसार एक नैतिक कर्म की प्रकृति क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2.5 सारांश

इस प्रकार नैतिकता, मानव जीवन की एक संस्था है जिसके अन्तर्गत, 'कौन सा आचरण उचित है और कौन सा अनुचित?', 'कौन सा चरित्र शुभ है और कौन सा अशुभ है?' जैसे प्रश्न उठाए जाते हैं और उत्तर दिए जाते हैं। हालांकि नैतिकता, नैतिक शुभ या नैतिक रूप से उचित होने का पर्यायवाची है। यह कहना कि कुछ (कृत्य) नैतिक है इस अर्थ में यह कहना नहीं है कि इसे उचित या अनुचित के रूप में आंका जा सकता है, वरन यह कहना है कि यह उचित है। नैतिकता का सार दूसरों के कल्याण को बढ़ावा देने में है, अथवा अहिंसा या इंद्रियों पर नियंत्रण करने आदि का अभ्यास करने में है। नैतिक होने का मतलब केवल उचित होना या शुभ आचरण और चरित्र होना नहीं है, बल्कि एक नैतिक एजेंट होना भी है जिसकी क्रिया या कार्यों को उचित या अनुचित के रूप में आंकलित किया जा सकता है। नैतिक कर्म की अवधारणा ऊपर वर्णित धार्मिक और दार्शनिक दोनों दृष्टिकोणों के अनुसार अलग–अलग है। कई विचारकों ने एक कर्म में निहित नैतिकता की विषय सामग्री को विभिन्न सूत्रीकरणों के माध्यम से समझाया है। उनके सूत्रीकरणों का प्रतिनिधित्व परिणाम सापेक्ष, परिणाम निरपेक्ष और सदाचार नैतिकता सिद्धांतों के रूप में किया गया है ।

2.6 कुंजी शब्द

नैतिकता (Morality) : नैतिकता उन रीति–रिवाजों और आदतों का एक समूह है जो हम कैसे सोचते हैं कि हमें कैसे रहना चाहिए या एक अच्छा मानव जीवन कैसा होना चाहिए को निर्मित करते हैं।

कर्म (Action) : यह एक मानवीय एजेंट द्वारा एक जानबूझ कर की गई गतिविधि है।

इरादा/प्रयोजन (Intention) : यह इच्छा मात्र से कहीं अधिक है, एक विशिष्ट परिवर्तन जिसे हम लाने का लक्ष्य रखते हैं।

2.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

गर्ट, बर्नार्ड. "द डेफिनिशन ऑफ मॉरालिटी". प्रथम प्रकाशन बुद्धवार अप्रैल 17, 2002; संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण सोमवार फरवरी 8, 2011.

टिम्मरमन्न, जेन्स. *काण्ट'स ग्राउंडवर्क ऑफ मॉरल्स.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007.

जैन, पी. *एथिक्स.* आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर, 2015.

मैक्केंजी, जॉन एस. *ए मैन्युअल ऑफ एथिक्स.* देल्हीः सुरजीत पब्लिकेशन्स, 2016.

तिवारी, केदारनाथ. *क्लासिकल इंडियन एथिकल थॉटः ए फिलोसोफिकल स्टडी ऑफ हिन्दू ,जैन, एंड बुद्ध थॉट.* देल्हीः मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, 2014.

हैरिसन, बर्नार्ड. "मॉरल जजमेंट, एक्शन एंड इमोशन". कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 59 / 229: 295–312.

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) नैतिक कर्म एक ऐसा कर्म है जो किसी व्यक्ति के विमर्शी लक्ष्यों को पूरा करने के संकल्प या इरादे से की जाती है। जब किसी की तर्क क्षमता के माध्यम से कार्य किया जाता है तो वह कार्य नैतिक कर्म है। यह देखते हुए किमानव विवेकशील कर्ता हैं, इसलिए उनके कार्यों का हमेशा मूल्यांकन किया जाता है क्योंकि प्रत्येक मानवीय कर्म नैतिक नहीं हो सकता है। इसलिए, सभी मानवीय कार्यों का मूल्यांकन नैतिक रूप से शुभ या अशुभ और उचित या अनुचित के रूप में किया जाता है। जब शब्द 'नैतिक कर्म' का उपयोग किया जाता है, तो नैतिक शुभ के संबंध में प्रस्तुत किया जाता है यह इंगित करने के लिए कि हम चरित्र के शुभत्व का लक्ष्य रखते हैं।

   दो तत्व एक नैतिक कार्रवाई की प्रकृति की व्याख्या करते हैं। वे हैं– ज्ञान या स्वैच्छिकता और स्वतंत्रता।

2) नैतिक कर्म नैतिक मूल्य वाला एक कर्म है जहाँ पर एक नैतिक चेतना एक नैतिक प्रतिक्रिया निर्मित करने में सहयोगी होती है। एक निर्नैतिक कर्म वह है जो नैतिक गुणवत्ता और नैतिक निर्णय के दायरे से रहित है। अनैतिक कार्य वह है जो किसी दिए गए समाज में स्वीकृत उचित और अनुचित के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

बोध प्रश्न II

1) नैतिक कर्म के सवाल पर बौद्ध और जैन दृष्टिकोण कमोवेश समान हैं। अष्टांगिक मार्ग और त्रिरत्न स्वीकार्य या उचित व्यवहार के लिए दिशानिर्देशों के समुच्चय हैं। कर्म अच्छे या बुरे बाह्य परिणामों के सन्दर्भ में नहीं हैं जिन्हें वह उत्पन्न करते हैं, बल्कि वे आंतरिक उद्देश्य जो उन्हें उद्यत करते हैं वही कर्म को शुभ या अशुभ बनाते है। उनके अनुसार एकमात्र परिणाम कर्म की उचितता या अनुचितता का निर्धारण नहीं करता है।

बोध प्रश्न III

1) परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त के अनुसार, नैतिक रूप से सही, गलत या अनिवार्य वह है जो अच्छा परिणाम देता है। कुछ भी आंतरिक रूप से अच्छा या बुरा नहीं है। नैतिक व्यवहार एक लक्ष्य–निर्देशित व्यवहार है, इसलिए परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से, मानव व्यवहार न तो अपने आप में सही है और न ही गलत है। हालांकि, परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से इरादों का वास्तव में कर्मों की उचितता या अनुचितता से कोई लेना–देना नहीं है। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत तीन अलग–अलग सिद्धान्त हैं– नैतिक स्वार्थवाद, नैतिक परार्थवाद, और नैतिक उपयोगितावाद।

बोध प्रश्न IV

1) इमानुएल काण्ट का मानना है किनैतिक शुभत्व का आनंद, खुशी और परिणाम उत्पन्न करने से कोई लेना–देना नहीं है। किसी कर्म का अनुचित होना आंतरिक होता है या उस तरह के कर्मों में निहित होता है जो परिणाम निरपेक्ष होते हैं काण्ट के लिए, एक कर्म का नैतिक मूल्य तब और केवल तब हो सकता है जब यह कर्तव्य भाव से किया जाता है। कर्तव्य भाव से कर्म करने की उनकी धारणा की मानक समझ यह है कि नैतिक नियम के अनुसार उचित कर्म करना। एक कर्म नैतिक रूप से अनुमन्य है या नहीं यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह नैतिक नियम अर्थात् निरपेक्ष आदेश के अनुरूप है या नहीं।

बोध प्रश्न V

1) डेविड ह्यूम के अनुसार नैतिक मूल्यांकन का प्राथमिक केन्द्र बिंदु आंतरिक अवस्थाएं हैं, जो एजेंट के सदाचार या अच्छे चरित्र लक्षण के साथ जुड़ा हुआ है। उनका मानना था कि नैतिकता का आधार यह है कि लोग आत्म–रुचि से प्रेरित होते हैं लेकिन वे दूसरों के प्रति प्रेम और सहानुभूति से भी प्रेरित होते हैं।

इकाई 3 सद्‌गुण और अवगुण*

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 सद्‌गुण का अर्थ

3.3 सुकरातः सद्‌गुण ज्ञान है

3.4 प्लेटो के चार प्रधान सद्‌गुण

3.5 अरस्तू की सद्‌गुण की अवधारणा

3.6 हिन्दू धर्म में सद्‌गुण

3.7 इस्लाम धर्म में सद्‌गुण

3.8 अवगुण

3.8.1 ईसाइयत में अवगुण की अवधारणा

3.9 सारांश

3.10 कुंजी शब्द

3.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम नीतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से सद्‌गुण और अवगुण का अध्ययन करेंगे। यह इकाई आपको निम्न बातें समझाएगीः

- सद्‌गुण का अर्थ,
- ग्रीक भाषा के तीन प्रमुख दार्शनिकों सुकरात, प्लेटो अरस्तू के अनुसार सद्‌गुण की अवधारणा,
- हिन्दू और इस्लाम धर्मों में निहित सद्‌गुण की अवधारणा,
- ईसाई धर्म में वर्णित अवगुण या पाप की अवधारणा।

3.1 परिचय

मनुष्य व्यक्ति और समूह के रूप में प्रसन्नता की खोज करता है। ग्रीक दार्शनिकों ने प्रसन्नता की खोज के साधन के रूप में सद्‌गुणों के विकास पर जोर दिया है। भारतीय दर्शनों में भी मानव–कल्याण में योगदान देने वाले गुणों पर चर्चा है, परन्तु प्रायः भारतीय दर्शन में सद्‌गुण की अवधारणा मानव प्रसन्नता पर केन्द्रित होने के स्थान पर मोक्ष एवं पुनर्जन्म से गुंथा हुआ है। ग्रीक दर्शन और ईसाई मत की साक्षात्कार (इलहाम) की अवधारणा के सम्मिलन के पश्चात् बहुत कुछ ऐसा ही पश्चिमी दर्शन में भी हुआ। किन्तु इस इकाई में हम सद्‌गुण के धार्मिक और

* डॉ. विल्फ्रेड डी'सूजा, पुष्पाश्रम महाविद्यालय, मैसूर, अनुवादक– श्री कुलदीप राय अग्निहोत्री, फरीदाबाद

धर्मशास्त्रीय विचारों के बारे में नहीं पढ़ेंगे बल्कि केवल उन तत्वों का अध्ययन करेंगे जो कमोबेश सार्वभौम मानवीय बुद्धि की सामान्य झलक देते हैं।

3.2 सद्‌गुण का अर्थ

ग्रीक भाषा में सद्‌गुण (virtue) के लिए आरते (arete; हिन्दी उत्कृष्टता या उत्कर्ष) शब्द का प्रयोग होता है। आरते किसी भी प्रकार की श्रेष्ठता के लिए प्रयुक्त होता है। किंतु श्रेष्ठता व्यक्ति के सन्दर्भ में प्रयोग की जाती है। इस प्रकार सद्‌गुण को मानवीय श्रेष्ठता के रूप की तरह वर्णित किया जा सकता है। लैटिन में वर्च्यु (virtue) को वर्च्युअस (virtuous) कहते हैं; जिसका अर्थ है नैतिक श्रेष्ठता। सद्‌गुण शुभ होने की चारित्रिक विशेषता या गुण है। वैयक्तिक सद्‌गुण वे चारित्रिक गुण हैं जो वैयक्तिक और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देते हैं, इसलिए पारिभाषिक रूप से शुभ होते हैं। सद्‌गुण (virtue) का विपरीतार्थक अवगुण अथवा दुर्गुण (vice) है। नीतिशास्त्र में सद्‌गुण का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में होता है (अ) सद्‌गुण चरित्र का गुण है– किसी विशेष स्थिति में जो उचित है उसे करना, अथवा सार्वभौमिक कर्तव्यों में से किसी का पालन करने का संस्कार, (ब) सद्‌गुण व्यवहार करने की आदत भी है, जो चरित्र के किसी गुण या संस्कार से सम्बन्धित (संवादित) हम किसी व्यक्ति की ईमानदारी या सभी से समान रूप से पेश आने की ईमानदारी को सद्‌गुण कह सकते हैं।

सद्‌गुण को विस्तृत मूल्य क्षेत्र में रखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मूल्य व्यवस्था होती है जो उसके विश्वास–तंत्र, विचारों अथवा मत निर्माण में योगदान देती है। मूल्य के पालन में एकता इसकी निरंतरता को सुनिश्चित करती है। और यह निरंतरता मूल्य को विश्वास, मत एवं विचारों से अलग करती है। इस सन्दर्भ में (जैसे–सत्य अथवा समानता अथवा धर्म) मूल्य ही केन्द्र बिंदु है जहाँ से हम कार्य करते हें या प्रतिक्रिया देते हैं। समाज में मूल्य होते हैं जिनका पालन उस संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति करता है। आमतौर पर व्यक्ति की मूल्य व्यवस्था समाज की मूल्य व्यवस्था ही होती है, लेकिन पूर्ण रूप से नहीं। व्यक्तिगत सद्‌गुणों को मूल्यों की चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– नीतिशास्त्र (सद्‌गुण–दुर्गुण, अच्छा–बुरा, नैतिक–निर्नैतिक, सही–गलत, अनुमोदित–अननुमोदित), सौन्दर्यशास्त्र (सुंदर, कुरूप, असंतुलित, आकर्षक), सैद्धान्तिक (राजनीतिक, आदर्श, धार्मिक अथवा सामाजिक विश्वास एवं मूल्य) और (सहजात/जन्मजात) मूल्य (जन्मजात मूल्य जैसे कि संतानोत्पत्ति और जीवन–संरक्षण)।

लायर्ड ने सद्‌गुणों को तीन वर्गों में विभक्त किया है:

क) वह सद्‌गुण जिसे 'उचित गुण कहते हैं'। यह सद्‌गुण किसी विशेष प्रकार के कर्तव्य के निष्पादन की आदत और उस चरित्र को निर्देशित करता है जो ऐसी कर्तव्यपरक क्रिया को सम्पन्न करने में सहायक होता है। इस प्रकार के सद्‌गुणी आचरण और उचित आचरण के मध्य अन्तर केवल यह है कि 'सद्‌गुणी आचरण' पद जो उचित है उसके आदतन निष्पादन पर बल देता है।

ख) 'अपेक्षित गुण' सम्बन्धी सद्‌गुण। सद्‌गुणी चरित्र के लिये ये अनिवार्य हैं किन्तु ये दुर्गुण चरित्र में भी पाये जाते हैं, और वास्तव में बुरे व्यक्ति में दुराचरण को बढ़ा सकते हैं। ऐसे सद्‌गुण बुद्धिमता और धीरज हैं। धैर्यवान खलनायक धैर्यहीन खलनायक की अपेक्षा कहीं अधिक घातक होता है।

ग) 'उदार गुण' सम्बन्धी सद्‌गुण। ये प्रमुख रूप से भावनात्मक (सम्वेगात्मक) प्रकार के होते हैं परन्तु ऐसे कर्मों में, जो अन्यथा उचित है, कुछ ऐसे तत्वों को जोड़ते हैं जो दृढ़ रूप से परिभाष्य नहीं हैं परन्तु जो सौन्दर्य अथवा नैतिक आन्तरिक मूल्य की प्रकृति का है। कभी–कभी ये नैतिक रूप से अनुचित आचरण को भी श्रेष्ठता का विचित्र गुण प्रदान कर देते हैं। इस सद्‌गुण को हम रोमांचकारी साहसिक क्रियाओं में भी पाते हैं। ये कभी–कभी लुटेरों तथा कभी–कभी निष्ठा के अयोग्य व्यक्तियों के प्रति प्रदर्शित निष्ठा में भी होते हैं। इस प्रकार के सद्‌गुणों में कुछ आन्तरिक मूल्य का होना प्रतीत होता हैय कम से कम इसका संकेत उस मूल्य के द्वारा किया जाता है जिसमें हम ऐसे सद्‌गुणों का आरोपण ऐसे व्यक्तियों के आचरण में करते हैं जहाँ उनके कर्मों में इन सद्‌णों के उपस्थित होने से भी कोई अच्छा निष्कर्ष प्राप्त नहीं होता है।

इनमें से नैतिक जीवन में सबसे महत्वपूर्ण सद्‌गुण 'उचित गुण' है। अपेक्षित सद्‌गुण स्पष्टतः उचित सद्‌गुण के आधीन रहता है, क्योंकि वे तभी मूल्यवान होते हैं जब वे ऐसे सद्‌गुण के साथ रहते हैं। उदारता सम्बन्धी सद्‌गुण अन्य दो सद्‌गुणों की अपेक्षा कहीं अधिक प्राकृतिक प्रतिभा पर निर्भर होते हैं और केवल कर्तव्यपरायणता से कठिनाईपूर्वक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के सद्‌गुण का आग्रह नैतिकता की अपेक्षा कलात्मकता अधिक लिये होता है, किन्तु ये भी शुभत्व को एक रंगत और रोमांचक वातावरण प्रदान करते हैं, जिसका अभाव कभी–कभी उचित गुण सम्बन्धी सद्‌गुण में होता है।

3.3 सुकरातः सद्‌गुण ज्ञान है

सुकरात के दर्शन का मुख्य सार सद्‌गुण है सुकरात के अनुसार, सद्‌गुण मनुष्य का गहनतम और आधारभूत गुण है। यह सद्‌गुण ज्ञान है। "यदि यदि ज्ञान सभी अच्छाईयों को समाहित करता है तो हम अपने इस संशय में सही हैं कि सद्‌गुण ज्ञान है।" यदि सद्‌गुण ज्ञान है तब इसे जाना जा सकता है और सतत सिखाया भी जा सकता है। यही ''स्वयं को जानना'' आदेश का अर्थ है। स्वयं को जानो का तात्पर्य अपने आन्तरिक आत्म को प्रकाशित करना है। आत्मज्ञान से मनुष्य स्वयं को आत्मनियंत्रित कर सकता है, जिसमें व्यक्ति स्वयं का स्वामी हो जाता है।

सुकरात के अनुसार, सद्‌गुण सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ (अच्छाई) है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। वे जोर देते हैं कि यदि यह सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ है, तो इसमें सार्वभौमिक संगतता होनी चाहिए और यह सभी के लिए समान होना चाहिए। अब, जो भी सार्वभौमिक संगतता लिये है और सभी के लिए समान है, वह वह ज्ञान है जिसे सभी में सामान्य तर्कबुद्धि के प्रयोग के द्वारा अवधारणाओं के माध्यम से जाना जा सकता है। 'सद्‌गुण व ज्ञान के मध्य का सम्बन्ध अपृथक्करणीय है। क्योंकि सुकरात सोचते हैं कि शुभ के आमतौर पर माने जाने वाले विभिन्न रूप जैसे स्वास्थ्य, धन, सौंदर्य, साहस, सहनशीलता इत्यादि केवल तभी शुभ हैं यदि वे प्रज्ञा द्वारा निर्देशित हैं। यदि ये बुरे विवेक द्वारा निर्देशित हों तो यह बुराई का रूप धारण कर लेते हैं।'

सुकरात के अनुसार नीतिशास्त्र का दूसरा आयाम भी है। यह शुभ के प्रत्यय के ज्ञान के ग्रहण मात्र से नहीं रुकता है। शुभ के प्रत्यय का ज्ञान मनुष्य के अन्य दूसरे सम्प्रत्ययों को नियंत्रित करता है और अंततः समग्र मनुष्य को, उसकी इच्छाशक्ति और

भावनाओं के साथ, अनिवार्यतः अच्छे कर्मों की ओर ले जाता है। इसलिए, नैतिक ज्ञान आत्मा को सुसंस्कृत करता है जिससे आत्मा अपनी विशुद्ध गरिमा को फिर से प्राप्त कर लेती है। इसी आधार पर सुकरात यह मानते हैं कि ''कोई भी व्यक्ति जानबूझकर गलत कार्य नहीं करता है'' और ''ज्ञान ही सद्‌गुण है''।

सुकरात कहते हैं कि सद्‌गुण व शुभत्व एक हैं यद्यपि उनका अभ्यास हम विभिन्न रूपों में करते हैं। प्लेटो के *प्रोटागोरस* में सुकरात कहते हैं कि यद्यपि विवेक या प्रज्ञा, सहनशीलता, साहस, न्याय और पवित्रता ये सभी सद्‌गुण के प्रधान रूप हैं, परन्तु इन सबमें विराजित सत्य एक ही है। तथापि एक दूसरे स्थानय प्लेटो की *मीनो* में, हम सुकरात को एक ऐसे सद्‌गुण की खोज करते हुए पाते हैं जिसमें अन्य सभी सद्‌गुण व्याप्त हों।

सुकरात इसके लिये स्वस्थ शरीर का उदाहरण लेते हुए इसकी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार, शारीरिक स्वास्थ्य से ही अन्य शारीरिक श्रेष्ठताएं बनी होती हैं। इसी तरह से अन्य सभी सद्‌गुण आत्मा के स्वास्थ्य पर निर्भर करते हैं। आत्मा के स्वास्थ्य का क्या अर्थ है? आत्मा के कई कार्य हैं। आत्मा का स्वास्थ्य इन विभिन्न कार्यों की व्यवस्था से विकसित होता है। प्लेटो के *गॉर्जियस* में सुकरात कहते हैं कि आत्मा का कार्य तर्क, सहनशीलता व इच्छा है। तर्कशक्ति के कार्य का उद्देश्य विवेक या प्रज्ञा, सहनशीलता के कार्य का उद्देश्य साहस, और इच्छा का के कार्य उद्देश्य संयम को प्राप्त करना है। इन कार्यों का एक–दूसरे से व्यवस्थित सम्बन्ध आत्मा के स्वास्थ्य का आधार है। इन कार्यों की क्रमबद्ध व्यवस्था निम्नवत् है; विवेक आदेश देता है और सहनशीलता आदेशों के निष्पादन में सहायता करता है जबकि इच्छा इन आदेशों के वास्तविक रूप में फलीभूत होने के लिए भौतिक आधार प्रदान करती है। प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य सद्‌गुण के माध्यम से प्रसन्नता को प्राप्त करना है। सद्‌गुणों की एकता या एकत्व का उद्देश्य व्यक्ति का परम आनंद है। ''तर्क बुद्धि के निर्देशन में सद्‌भावपूर्ण गतिविधियों की सक्रियता ही आनंद प्रदान करती है।'' इस प्रकार, सुकरात की सद्‌गुण की एकात्म अवधारणा का अर्थ है; ''अच्छे व्यक्ति की आत्मा उसके सभी कार्यों की जैविक एकता है।''

सुकरात की सद्‌गुण की एकात्म की अवधारणा अन्ततः यह प्रतिपादित करती है कि शुभ एक है, जो मानव की सभी आन्तरिक रूप से अच्छी नैतिक क्रियाओं के मूल में है। सुकरात प्लेटो की *रिपब्लिक* में कहते हैं कि ज्ञेय वस्तुओं के संसार में अन्तिम और बमुश्किल ज्ञेय वस्तु शुभ का प्रत्यय है, और यही वास्तव में जो भी उचित और सुन्दर है, उसका कारण है, दृश्य जगत में प्रकाश की जननी, और प्रकाश का रचयिता और बोधगम्य जगत में सत्य और तर्कबुद्धि का स्वयं स्रोत है, और व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन में बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से आचरणकर्ता की दृष्टि है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) सद्‌गुण का तात्पर्य क्या है?

.....

.....

.....

2) सुकरात की उक्ति ''सद्गुण ही ज्ञान है?'' की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 प्लेटो के चार प्रधान सद्गुण

प्लेटो ने जिन चार सद्गुणों का वर्णन *रिपब्लिक* में किया है उन्हें बाद में प्रधान सद्गुण कहा गया। अंग्रेजी शब्द कार्डिनल (cordinal) लैटिन भाषा के कार्डो (cardo) से बना है जिसका अर्थ है; चौखट। प्रधान सद्गुण वे सद्गुण हैं जो नैतिक जीवन को वैसे ही चारों ओर से बांधे रहते हैं जैसे चौखट दरवाजे को। ये चार प्रधान या मुख्य सद्गुण निम्नलिखित हैं–

1) विवेक (आंकलनात्मक) – सम्पूर्ण को देखना
2) साहस (आत्मा या स्पिरिट) – सभी का संरक्षण
3) सहनशीलता या संयम (सम्वेदना या एपिटाइट) – सभी की सेवा
4) न्याय (आधारभूत/संरक्षण सद्गुण) – ''स्वयं में कार्यरत रहना''। उदाहरण के लिए –"आनी आत्मा की ओर झुकना"/''स्वयं को जाना''।

प्लेटो यह बताते हैं कि व्यक्ति इन सद्गुणों को कैसे प्राप्त कर सकता हैः विवेक बुद्धि के अभ्यास से आता है; साहस भावनाओं पर नियन्त्रण से आता है; सहनशीलता (या संयम) इच्छाओं पर बुद्धि की विजय से आती है और इन सबसे न्याय उत्पन्न होता है। न्याय ऐसी अवस्था है जिसमें मन के सभी तत्व एक दूसरे के साथ सहअस्तित्व में होते हैं। प्लेटो ने न्याय को मूल एवं संरक्षण सद्गुण इसलिए माना है क्योंकि जब कोई एक बार न्याय को समझ लेता है तब वह तीनों अन्य सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है। और जब व्यक्ति चारों सद्गुणों को धारण करता है, तब वह न्याय ही है जो सब सद्गुणों को एक साथ रखता है।

3.5 अरस्तू की सद्गुण की अवधारणा

अरस्तू ने कहा कि नैतिक उद्देश्य परम–आनन्द (या परम सुख) (Eudaimonia) है, जिसे प्रसन्नता कहा जा सकता है, और यह व्यक्ति की आत्मा के सद्गुणों के अनुकूल आचरण में निहित है। अरस्तू की अपनी पदावली में 'परम आनन्द' उद्देश्य अथवा वह तत्व है जिसे बाद में नैतिक जीवन का अन्तिम कारण कहा गया, जबकि सद्गुण वह है जिसे बाद में 'आकार या रूप' अथवा नैतिक जीवन का आकारिक कारण कहा गया। 'आकार या रूप' चित्रकार के मन में विराजित चित्र की अवधारणा या सम्प्रत्यय के अनुरूप है, जो कृत्य को निर्देशित और सीमित करती है, और रचना को आकार प्रदान करती है। अरस्तू ने सद्गुण को चुनाव करने की आदत कहा है, जिसकी विशेषताएं साधन के अवलोकन अथवा सहनशीलता में निहित होती हैं, जो जैसी कि बुद्धि द्वारा निर्धारित की जाती हैं या वैसी जैसा व्यवहार–कुशल व्यक्ति निर्धारित करता है।

अरस्तू ने सद्‌गुण को कार्यों की आदत के रूप में प्राथमिक रूप से तथा चरित्र की विशेषता के रूप में द्वितीयक रूप में देखा है। सद्‌गुण केवल आदत नहीं है, बल्कि चुनाव की आदत है। अरस्तू ने चुनाव को बुद्धि द्वारा जांच पड़ताल के बाद हमारी अपनी सामर्थ्य के अनुसार वस्तुओं की सोद्देश्य इच्छा के रूप में परिभाषित किया है। कुछ अर्थों में चुनाव वस्तुओं के प्रति व्यवहार से स्वतंत्र होता है। बार–बार ऐसे चुनावों का उद्देश्यपूर्ण दुहराव नैतिक आचरण की आदत बना जाता है, जिसे हम सद्‌गुण कहते हैं। उदाहरण के लिए, कष्ट सहते हुए कर्म करते चले जाना जब आदत बन जाता है, तो यह साहस हो जाता है। कोई अच्छा कार्य करना संयोग या केवल आवेग हो सकता है, इसका बार–बार आदतन दुहराव सद्‌गुण बन जाता है।

अरस्तू की परिभाषा का सबसे चर्चित बिन्दु उनका मध्यम मार्ग है। सद्‌गुण को दो अवगुणों के मध्य को माना गया है; उदाहरण के लिए, साहस बिना सोचे–समझे किये गये कार्य और कायरता के मध्य अवस्थित है। और उदारता अतिव्ययता एवं कंजूसी के मध्य की स्थिति है। चरम पर स्थित अवगुणों के सापेक्ष मध्यम बिन्दु का स्थान प्रत्येक व्यक्ति की अपनी–अपनी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक राजनेता की तुलना में एक सैनिक का साहस बिना सोचे–समझे करने के प्रवृत्ति के अधिक निकट होगा, सैनिक के सन्दर्भ में जोखिम लेना उसका कार्य से जुड़ा है, जबकि यह जोखिम लेना राजनेता के सन्दर्भ में आपराधिक कृत्य होगा। यह विचार निश्चित रूप से कला में अनुपात और सामंजस्य पर ग्रीक के प्रभाव से सहमति रखता है, जैसाकि इस कहावत 'अति नहीं' या 'सद्‌गुण मध्य में अवस्थित हैं' से अभिव्यक्त होता है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) प्लेटो के अनुसार चार प्रधान सद्‌गुणों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) अरस्तू की सद्‌गुण की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 हिन्दू धर्म में सद्गुण

हिन्दू धर्म में सद्गुण केन्द्रीय भूमिका में है, जिसका धर्म का अनुसरण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इसका पालन करने के लिए कहा गया है। ये मनुष्य के भेदक गुण हैं जो व्यक्ति को शुभ वातावरण में रहने देते हैं। वेदों एवं धर्मशास्त्रों (जैसे, *सांख्यकारिका, चरकसंहिता*) में तीन भौतिक गुणों का वर्णन किया गया हैः सत्त्व (शुभ, रचना, शांति एवं बुद्धि), रजस (कामना, गतिशीलता, ऊर्जा एवं सक्रियता) तथा तमस (अज्ञानता, अनदेखी, जड़त्व एवं विध्वंस)। सभी व्यक्तियों में इन तीनों का मिश्रण होता है लेकिन किसी में किसी तत्व की प्रधानता होती है तो दूसरे व्यक्ति में अन्य तत्व की। जिसमें सत्त्वगुण प्रधान हैं उसके स्वभाव में भी इसकी प्रधानता होगी, जिसकी प्राप्ति व्यक्ति धर्म के गुणों के पालन से होती है।

सत्व गुण की निम्नलिखित अवस्थाएं हैंः **परार्थवादः** संपूर्ण मानवता की निःस्वार्थ सेवा; **संयम एवं संतुलनः** सभी मामलों में संयमित एवं संतुलित होना। यौन–सम्बन्ध, भोजन एवं अन्य आनंददायी चीजें संतुलित मात्रा में होनी चाहिए। यह सम्प्रदाय और विश्वास पर निर्भर करता है, कुछ लोग विश्वास करते हैं कि इसका आशय है ब्रह्मचर्य, जबकि कुछ संतुलन के स्वर्ण मार्ग में विश्वास करते हैंः जैसे–मानवीय कामनाओं का न तो बलपूर्वक दमन किया जाय और न मानवीय सुख का परित्याग, लेकिन न ही उसमें पूरी तरह से आसक्त हुआ जाय और न संतुलन का परित्याग। **ईमानदारीः** व्यक्ति का अपने प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति एवं मानवता के प्रति ईमानदार होना आवश्यक है। **निर्मलताः** बाहरी निर्मलता स्वास्थ्य एवं सफाई के लिए तथा आंतरिक स्वच्छता ईश्वर के प्रति समर्पण, निःस्वार्थता, अहिंसा एवं अन्य दूसरे गुणों के अभ्यास से आती है, जिसे नशे से विरत होकर और पृथ्वी के संरक्षण और सम्मान से बनाये रखा जाता है। **सार्वभौमिकताः** प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक वस्तु और विश्व की गति के प्रति सहनशीलता और सम्मान प्रदर्शित करना। **शांतिः** अपने एवं अपने आस–पास के व्यक्तियों के लाभ के लिए व्यक्ति का शांतिपूर्ण व्यवहार करना। **अहिंसाः** इसका अर्थ है हत्या न करना अथवा किसी प्राणी के प्रति किसी भी ढंग से हिंसक न होना। इसीलिए हिंसा धर्म का पालन करने वाले शाकाहारी होते हैं, क्योंकि स्वास्थ्यपूर्ण भोजन के लिए कम हिंसक साधन उपलब्ध होने पर भोजन के लिए पशुओं की हत्या को वे हिंसक मानते हैं। **बुजुर्गों एवं गुरुओं के प्रति सम्मानः** बुद्धिमान एवं निःस्वार्थी लोगों के प्रति सम्मान एक महत्पूर्ण सद्गुण है। गुरु अथवा आध्यात्मिक गुरु अनेक वेद आधारित आध्यात्मिकताओं में सर्वश्रेष्ठ सिद्धांतों में से एक है, और ईश्वर के समान माना जाता है।

3.7 इस्लाम धर्म में सद्गुण

मुस्लिम परंपरा के अनुसार *कुरान* ईश्वर का वचन है। यह सभी सद्गुणों का महान भंडार है। पैगंबर ने हदीस् के माध्यम से मानवीय सद्गुणों का वर्णन किया है। इस्लाम का अर्थ है 'स्वीकृति'। यह ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण है, यह वस्तुओं जैसी हैं उसका स्वीकरण है। दया और करुणा ईश्वर के सबसे प्राथमिक गुण हैं, धार्मिक भाषा में यही रहमान एवं रहीम हैं। कुरान के सभी 114 अध्याय, एक अपवाद को छोड़कर, इस पद से शुरू होते हैं– ''करुणामय, दयालु ईश्वर के नाम पर''। अरबी में करुणा के लिए 'रहम' शब्द है। सांस्कृतिक प्रभाव के रूप में इसकी जड़ें कुरान में भी हैं। एक सच्चा मुसलमान प्रत्येक दिन, प्रत्येक प्रार्थना, और प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य दयालु एवं

करुणामय ईश्वर से आग्रह के साथ शुरू करता है। उदाहरण के लिए – बिस्मिल्लाह अल–रहमान अल–रहीम के उच्चारण से शुरू करता है। मुस्लिम धर्मग्रंथ, बंधक यौद्धाओं, विधवाओं, अनाथों एवं गरीबों के प्रति करुणा की सीख देते हैं। परंपरागत रूप से जकात (एक प्रकार का आर्थिक कर), जो निर्धन एवं जरूरतमंद लोगों के लिए इकट्ठा किया जाता है, को देना प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य है। रमजान के महीने में उपवास या सौम का व्यावहारिक उद्देश्य भूखे एवं भाग्यहीनों की सहायता करना, दूसरे के कष्टों के प्रति लोगों को संवेदनशील बनाना एवं निर्धन और भूखे लोगों के लिए करूणा पैदा करना है।

इस्लाम के अनुसार, सद्‌गुण हैं – प्रार्थना, प्रयाश्चित, ईमानदारी, वफादारी, निष्ठा, स्वल्प–व्ययिता, विवेक, संयम, आत्मसंयम, अनुशासन, दृढ़ता, धैर्य, आशा, गरिमा, साहस, न्याय, सहनशीलता, विवेक, शुभ वचन, सम्मान, शुद्धता, शिष्टाचार, दया, आभार, उदारता, संतोष, इत्यादि।

3.8 अवगुण

अवगुण अथवा दुर्गुण को अनैतिक, चरित्र को भ्रष्ट करने वाली एवं समाज को पतनशील बनाने वाला व्यवहार या आदत माना जाता है। अधिक गौण प्रयोग में, अवगुण किसी अनुचित कृति, दोष, अनिश्चय अथवा केवल किसी एक बुरी आदत को कह सकते हैं। अनुचित कृत्य, दोष, पाप, बुराई और भ्रष्टाचार अवगुण के पर्यायवाची हैं। इसके वास्तविक अर्थ को व्यक्त करने वाला अंग्रेजी पद *वाइसियस* (vicious) है, जिसका अर्थ है "अवगुणों से भरा हुआ"। इस अर्थ में वाइस (vice) शब्द लैटिन के *विटियम* (vitium) से निकला है; जिसका अर्थ है– "दुर्बलता अथवा दोष"। अवगुण सद्‌गुण का विपरीतार्थक है।

कुछ लोगों द्वारा अनैतिक मानी जाने वाली क्रियाओं के लिए भी बड़े पैमाने पर दुर्गुण शब्द का प्रयोग होता है। इन क्रियाओं में मद्यपान एवं अन्य ड्रग्स, जुआ, धूम्रपान, ठगी, झूठ बोलना और स्वार्थीपन इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है। स्थापित सांस्कृतिक मूल्यों–मानदण्डों के विरूद्ध व्यवहार को भी अवगुण माना जाता है। उदाहरण के लिए, जिन समाजों में मर्दानगी को मर्दों के व्यवहार का एक आवश्यक तत्व माना जाता है उनमें किसी मर्द के व्यवहार में औरतपन को अवगुण माना जाता है।

3.8.1 ईसाईयत में अवगुण की अवधारणा

ईसाईयों की मान्यता है कि दुर्गुण/अवगुण दो प्रकार के होते हैं– एक वह जो मनुष्य की मूल प्रवृत्ति (जैसेकि, काम वासना) से उत्पन्न होता है, और दूसरा जो आध्यात्मिक क्षेत्र में मिथ्या मूर्तिपूजा से उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकार के अवगुण की तुलना में पहले प्रकार के अवगुण को कम गंभीर माना गया है। ईसाईयों द्वारा जिन्हें आध्यात्मिक अवगुण के रूप में माना गया है वे हैं; ईशनिंदा (पवित्र से धोखा), स्वधर्म त्याग (श्रद्धा से धोखा), निराशा (आशा से धोखा), घृणा (प्रेम से धोखा) और उदासीनता (ग्रंथ के अनुसार, कठोर हृदय)। ईसाई धर्मशास्त्रियों ने माना है कि सबसे विध्वंसक अवगुण है, विशेष प्रकार का गर्व अथवा आत्म–मूर्ति पूजन। उन्होंने अपने इस विचार के पक्ष में यह तर्क दिया है कि इस प्रतिस्पर्धी अवगुण से ही अन्य सारे अवगुण उत्पन्न होते हैं। जूडो–क्रिश्चियन संप्रदायों में इसे व्यक्ति को पतन की ओर ले जाने वाला, और पैशाचिक (शैतान से जुड़ा) माना गया है। इस अतिभार वाले अवगुण की निंदा चर्च द्वारा प्रायः की गई है।

रोमन कैथोलिक चर्च अवगुण, जोकि पाप की ओर प्रवृत्त आदत है एवं स्वयं पाप में भेद करता है। याद रखें कि रोमन कैथोलिक चर्च में पाप वह अवस्था है जो नैतिक रूप से गलत कृत्यों से उत्पन्न होती है। इस परिच्छेद में इस शब्द का अर्थ सदैव पाप कर्म से लिया गया है। व्यक्ति अपने अवगुणों के कारण नहीं बल्कि पापों के कारण ईश्वर की कृपा से वंचित होता है। थॉमस एक्विनास की शिक्षा है कि "परम रूप में कहा जाये, तो पाप दुराचरण में अवगुण से अधिक है। दूसरी ओर, व्यक्ति के पाप यदि क्षमा कर दिये जाएं तो भी उसके अवगुण बने रह सकते हैं। ठीक वैसे ही जैसे सबसे पहले पाप की ओर झुकाव से अवगुण बने, उसी तरह से पाप की ओर झुकाव को प्रतिबन्धित करके और बार–बार सद्गुण का पालन करने से ही अवगुण मिटाये जा सकते हैं। संत थॉमस एक्विनास कहते हैं कि सद्गुणों के पुनर्वास (पुनः स्थापित होना) एवं अधिग्रहण से सद्गुसण आदत के रूप में नहीं बचते, बल्कि केवल संस्कार के रूप, और उस रूप में जो उच्छेद (नष्ट होना) की प्रक्रिया में हैं, शेष रहते हैं।

दान्ते के अनुसार, सात घातक अवगुण हैं: **अहंकार**–अत्यधिक आत्मप्रेम, आत्मश्लाघा (ईश्वर एवं अन्य मनुष्य के सन्दर्भ से हटाकर आत्म को ग्रहण करनाय दान्ते के अनुसार, ''अपने प्रति प्रेम पथभ्रष्ट होकर अपने पड़ोसियों के प्रति घृणा एवं दुर्मति बन जाता है।) सात घातक पापों की लैटिन सूची में, अहंकार को *सुपरबिआ* से संदर्भित किया जाता है। **धन लिप्साः** (लालच) आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की इच्छा (दान्ते के अनुसार, ''धन एवं शक्ति के प्रति अत्यधिक प्रेम'')। लैटिन सूची में, धन–लिप्सा को *अवरिशिआ* से संदर्भित किया गया है। **वासना**– अत्यधिक काम–इच्छा। दान्ते का मापदण्ड है कि "वासना सच्चे प्रेम से दूर करती है"। लैटिन सूची में, वासना को *लक्जरिआ* से संदर्भित किया गया है। **क्रोधः** घृणा, प्रतिशोध या नकार की भावना, और साथ ही न्याय के क्षेत्र से परे सजा की इच्छा (दान्ते के अनुसार, न्याय से प्रेम प्रतिशोध और घृणा की भावना का अन्त कर देता है) लैटिन सूची में, क्रोध को *इरा* से संदर्भित किया गया है। **भोजन लिप्साः** खाने–पीने या नशे (व्यसन) में डूबे रहना या स्वाद के लिए भागते रहना (''सुख के प्रति अत्यधिक प्रेम''– दान्ते के अनुसार)। लैटिन सूची में, भोजन–लिप्सा को *गुला* से संदर्भित किया गया है। **शत्रुता या ईर्ष्याः** दूसरे की सम्पत्ति को देखकर आक्रोश करना (दान्ते कहते हैं – ''अपनी सम्पत्ति के प्रति प्रेम पतित होकर दूसरों को उनके अधिकार से वंचित करना है'')। लैटिन सूची में, शत्रुता या ईर्ष्या को *इन्विडिआ* से संदर्भित किया गया है। **आलस्यः** सुस्ती या समय अथवा अन्य प्रदत्त संसाधनों का अपव्यय। आलस्य की आलोचना इसलिए की गई है क्योंकि यह दूसरों पर काम के बोझ को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, आवश्यक कार्य भी अधूरे रह जाते हैं। लैटिन सूची में, आलस्य को *एसिडि* अथवा *एसिडिआ* से संदर्भित किया गया है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म में प्रस्तुत सद्गुणों को बताएं।

.....

.....

.....

.....

2) अवगुण क्या है? दान्ते के अनुसार सात घातक अवगुण या पाप कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3.9 सारांश

अंग्रेजी का वर्च्यु शब्द लैटिन भाषा के वर्च्युअस शब्द से आता है, जिसका अर्थ है नैतिक श्रेष्ठता। सद्‌गुण वह आचरण है जिसे शुभ माना जाता है। वैयक्तिक सद्‌गुण निजी एवं सार्वजनिक कल्याण को आगे बढ़ाता है और इस प्रकार पारिभाषिक रूप से शुभ होता है। सद्‌गुण का विपरीतार्थक अवगुण है। जहाँ सुकरात के लिए ज्ञान ही सद्‌गुण है, वहीं अरस्तू के लिए सद्‌गुण दो अतिवादी स्थितियों के मध्य व्यवहार करना है। प्लेटो चार प्रधान सद्‌गुणों की बात करते हैं जिससे अन्य नैतिक गुण विकसित होते हैं। प्रत्येक धर्म सद्‌गुणमय जीवन की वकालत करता है। हम लोगों ने यह देखा कि कैसे हिन्दू धर्म व मुस्लिम धर्म सद्‌गुणों पर आधारित हैं। दूसरी ओर, अवगुणों और सात पापों को को देखने पर हम ईसाईयत के सद्‌गुणी जीवन के विचार को समझते है। अतः तीनों धर्मों का संदेश है– सद्‌गुणों को प्राप्त करना और अवगुणों से दूर रहना।

3.10 कुंजी शब्द

आरते (Arete) : श्रेष्ठता सूचक ग्रीक पद।

सद्‌गुण(Virtue) : नैतिक उच्चता के लिए लैटिन पद।

विटियम (Vitium) : लैटिन में अवगुण हेतु प्रयुक्त शब्द, जिसका अर्थ है दोष।

प्रधान सद्‌गुण (Cardinal virtue) : यह लैटिन के कार्डो शब्द से निकला है जिसका अर्थ चौखट होता है। अतः प्रधान सद्‌गुण का आशय उन मुख्य सद्‌गुणों से है, जिन पर अन्य सद्‌गुणों टिके रहते हैं।

3.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

लिल्ली, विलियम. *एन इंट्रोडक्शन टू एथिक्स.* न्यू देल्हीः एलायड पब्लिशर्स प्रा. लि., 1980.

ऑलिवेरा, जॉर्ज. *वर्च्यु इन डाइवर्स ट्रेडिशन्स.* बैंग्लोरः एशियन ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, 1998.

गुथरी, डब्ल्यू. के. सी. *सोक्रेटीज.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971.

सिंगर, पीटर (एडि.). *ए कम्पेनियन टू एथिक्स.* कैम्ब्रिजः ब्लैकवेल पब्लिशर्स, 1995.

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) ग्रीक भाषा में सद्गुण के लिए आरते शब्द का प्रयोग होता है। आरते का अर्थ है किसी भी प्रकार श्रेष्ठता। किंतु यह श्रेष्ठता व्यक्ति के लिए प्रयोग की जाती है। इस प्रकार, सद्गुण को मानवीय श्रेष्ठता के रूप में वर्णित किया जा सकता है। लैटिन में वर्च्यु को वर्च्युअस कहते हैं, जिसका अर्थ है नैतिक श्रेष्ठता। सद्गुण अच्छे व्यक्ति का वह गुण है जिसे अच्छा माना जाता है।

   वैयक्तिक सद्गुण वे गुण हैं जो व्यक्ति और समाज के कल्याण को बढ़ाते हैं, इसलिए पारिभाषिक रूप से शुभ होते हैं। नीतिशास्त्र में, सद्गुण का विपरीतार्थक अवगुण (vice) है। नीतिशास्त्र में सद्गुण का प्रयोग दो अर्थों में होता हैः (अ) चारित्रिक गुण– किसी विशेष दशा में उचित कार्य करने का संस्कार या उसका अथवा अधिकतम सार्वभौमिक दायित्वों का निष्पादन। (ब) सद्गुण कार्य करने की आदत है जो चारित्रिक गुण या संस्कार से सम्बन्धित (संवादित) है। हम किसी व्यक्ति की ईमानदारी, या कर्तव्यों की ईमानदारी को समानरूप से सद्गुण कह सकते हैं।

2) सुकरात के अनुसार, सद्गुण सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ (अच्छाई) है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। वे जोर देते हैं कि यदि यह सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ है, तो इसमें सार्वभौमिक संगतता होनी चाहिए और यह सभी के लिए समान होना चाहिए। अब, जो भी सार्वभौमिक संगतता लिये है और सभी के लिए समान है, वह वह ज्ञान है जिसे सभी में सामान्य तर्कबुद्धि के प्रयोग के द्वारा अवधारणाओं के माध्यम से जाना जा सकता है। 'सद्गुण व ज्ञान के मध्य का सम्बन्ध अपृथक्करणीय है। क्योंकि सुकरात सोचते हैं कि शुभ के आमतौर पर माने जाने वाले विभिन्न रूप जैसे स्वास्थ्य, धन, सौंदर्य, साहस, सहनशीलता इत्यादि केवल तभी शुभ हैं यदि वे प्रज्ञा द्वारा निर्देशित हैं। यदि ये बुरे विवेक द्वारा निर्देशित हों तो यह बुराई का रूप धारण कर लेते हैं।'

बोध प्रश्न II

1) प्लेटो ने जिन चार सद्गुणों की व्याख्या रिपब्लिक में की है। वे हैंः विवेक, साहस, सहनशीलता (या संयम), न्याय। प्लेटो यह बताते हैं कि व्यक्ति इन सद्गुणों को कैसे प्राप्त कर सकता हैः विवेक बुद्धि के अभ्यास से आता है; साहस भावनाओं पर नियन्त्रण से आता हैः सहनशीलता (या संयम) इच्छाओं पर बुद्धि की विजय से आती है और इन सबसे न्याय उत्पन्न होता है। न्याय ऐसी अवस्था है जिसमें मन के सभी तत्व एक दूसरे के साथ सहअस्तित्व में होते हैं। प्लेटो ने न्याय को मूल एवं संरक्षण सद्गुण इसलिए माना है क्योंकि जब कोई एक बार न्याय को समझ लेता है तब वह तीनों अन्य सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है। और जब व्यक्ति चारों सद्गुणों को धारण करता है, तब वह न्याय ही है जो सब सद्गुणों को एक साथ रखता है।

2) अरस्तू ने सद्गुण को चुनाव करने की आदत कहा है, जिसकी विशेषताएं साधन के अवलोकन अथवा सहनशीलता में निहित होती हैं, जो जैसी कि बुद्धि द्वारा

निर्धारित की जाती हैं या वैसी जैसा व्यवहार–कुशल व्यक्ति निर्धारित करता है। अरस्तू ने सद्‌गुण को कार्यों की आदत के रूप में प्राथमिक रूप से तथा चरित्र की विशेषता के रूप में द्वितीयक रूप में देखा है। सद्‌गुण केवल आदत नहीं है, बल्कि चुनाव की आदत है। अरस्तू की परिभाषा का सबसे चर्चित बिन्दु उनका मध्यम मार्ग है। सद्‌गुण को दो अवगुणों के मध्य को माना गया है; उदाहरण के लिए, साहस बिना सोचे–समझे किये गये कार्य और कायरता के मध्य अवस्थित है। और उदारता अतिव्ययता एवं कंजूसी के मध्य की स्थिति है। चरम पर स्थित अवगुणों के सापेक्ष मध्यम बिन्दु का स्थान प्रत्येक व्यक्ति की अपनी–अपनी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक राजनेता की तुलना में एक सैनिक का साहस बिना सोचे–समझे करने की प्रवृत्ति के अधिक निकट होगा, सैनिक के सन्दर्भ में जोखिम लेना उसका कार्य से जुड़ा है, जबकि यह जोखिम लेना राजनेता के सन्दर्भ में आपराधिक कृत्य होगा। यह विचार निश्चित रूप से कला में अनुपात और सामंजस्य पर ग्रीक के प्रभाव से सहमति रखता है, जैसाकि इस कहावत 'अति नहीं' या 'सद्‌गुण मध्य में अवस्थित हैं' से अभिव्यक्त होता है।

बोध प्रश्न III

1) हिंदू सद्‌गुण हैंः मानवता की निःस्वार्थ सेवा, संयम, आत्मसंयम, ईमानदारी, निर्मलता, सुरक्षा, धरती का संरक्षण और सम्मान, सार्वभौमिकता, शांति, अहिंसा, बड़ों एवं गुरुओं के प्रति समर्पण एवं सम्मान इत्यादि। इस्लाम के अनुसार, सद्‌गुण हैं – प्रार्थना, प्रयाश्चित, ईमानदारी, वफादारी, निष्ठा, स्वल्प–व्ययिता, विवेक, संयम, आत्मसंयम, अनुशासन, दृढ़ता, धैर्य, आशा, गरिमा, साहस, न्याय, सहनशीलता, विवेक, शुभ वचन, सम्मान, शुद्धता, शिष्टाचार, दया, आभार, उदारता, संतोष, इत्यादि।

2) अवगुण अथवा दुर्गुण को अनैतिक, चरित्र को भ्रष्ट करने वाली एवं समाज को पतनशील बनाने वाला व्यवहार या आदत माना जाता है। अधिक गौण प्रयोग में, अवगुण किसी अनुचित कृति, दोष, अनिश्चय अथवा केवल किसी एक बुरी आदत को कह सकते हैं। अनुचित कृत्य, दोष, पाप, बुराई और भ्रष्टाचार अवगुण के पर्यायवाची हैं। इसके वास्तविक अर्थ को व्यक्त करने वाला अंग्रेजी पद वाइसियस है, जिसका अर्थ है "अवगुणों से भरा हुआ"। इस अर्थ में वाइस शब्द लैटिन के विटियम से निकला है; जिसका अर्थ है– "दुर्बलता अथवा दोष"। सात घातक अवगुण हैं–आत्मश्लाघा या अहंकार, लालच, वासना, क्रोध, भोजन लिप्सा, ईर्ष्या और आलस्य।

इकाई 4 नैतिक नियम*

रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 नैतिक नियम की परिभाषा

4.3 बुद्धि एवं नैतिकता

4.4 सार्वभौमिकता एवं (प्राकृतिक) नैतिक नियम

4.5 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं परिवर्तन

4.6 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं मानव गरिमा

4.7 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं आन्तरिक अशुभ संकल्पना

4.8 प्राकृतिक नैतिक नियम की आलोचना

4.9 सारांश

4.10 कुंजी शब्द

4.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है:

- नैतिकता की परिघटना को समझना,
- प्राकृतिक नैतिक नियम को परिभाषित करना और उसके स्वभाव को समझना; अर्थात् उसकी सार्वभौमिकता एवं विशिष्टता, प्राकृतिक नियम में बदलाव, नैतिक नियम का विशिष्ट नियमों से सम्बन्ध, मानवीय गरिमा से इसका सम्बन्ध, आंतरिक अशुभ की संकल्पना को समझना, और
- (प्राकृतिक) नैतिक नियम की आलोचना को समझना और इसका उत्तर देना।

4.1 परिचय

प्राकृतिक नियम का ज्ञान इतना व्यापक है जितना कि स्वयं मानव। उसी प्रकार से उसकी समालोचना। यहाँ हम भारतीय दर्शन के ऋत् की अवधारणा (*ऋग्वेद* में उल्लिखित) को प्राकृतिक नैतिक नियम के उदाहारण के रूप में ले सकते हैं। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक नैतिक नियम पर विचार करना है। मुख्यतः नैतिक नियम पद आमतौर से इमानुएल काण्ट के नैतिक दर्शन के सन्दर्भ में लिया जाता है। हमारे नीतिशास्त्र के पाठ्यक्रम में काण्ट के नैतिक दर्शन पर एक अलग इकाई है, इसलिए इस इकाई में हमारा केन्द्र बिन्दु प्राकृतिक नैतिक नियम पर होगा। इस इकाई में 'नैतिक नियम' का अर्थ 'प्राकृतिक नैतिक नियम' ही लिया जाना चाहिए जब तक

* डॉ. कुरियन जोसेफ, सेन्ट एन्टोनी'ज महाविद्यालय, बैंग्लोर, अनुवादक– श्री कुलदीप राय अग्निहोत्री, फरीदाबाद

कि कोई अन्य विशेष अर्थ ना दिया गया हो। सबसे पहले हम प्राकृतिक नैतिक नियम की संकल्पना का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे। फिर उसके बाद प्राकृतिक नैतिक नियम की आधारभूत आलोचनाओं का उल्लेख करेंगे। और अंत में, हम कुछ आलोचनाओं का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

सहज तर्कबुद्धि के प्रकाश में व्यक्ति अच्छे और बुरे में अंतर करता है। सैद्धान्तिक बुद्धि के अनुसार, वस्तुओं के अस्तित्व के प्रति जिज्ञासा ही प्रत्येक ज्ञान की शुरूआत है। शुभ के 'परामर्शात्मक चरित्र' अथवा 'चाहिए' चरित्र आद्य नैतिक परिघटना है और नीतिशास्त्र की शुरूआत ही आद्य परिघटना से होती है। व्यावहारिक तर्कबुद्धि की उत्पत्ति भी यहीं से होती है। शुभ और अशुभ के बीच अंतर शुभ के स्वभाव में निहित है। अच्छाई व्यक्ति को उस ओर चलने को प्रेरित करती है जो उसे करना चाहिए तथा बुराई उसे विपरीत दिशा में ढकेलती है। अच्छाई व्यक्ति पर स्वयं को आरोपित करती है, तथा जो व्यक्ति इसे समझ लेता है वह अच्छाई और बुराई के बीच के अंतर्विरोध को भी समझ लेता है।

शुभ–बुद्धि अथवा शुभ का आह्वान (*Ratio boni*) यह है कि प्रत्येक व्यक्ति शुभ चाहता है। सभी व्यक्ति शुभ की कामना करते हैं क्योंकि शुभ स्वयं में काम्य है। जो भी व्यक्ति रेशियो बोनी (*Ratio boni*) को समझता है, वह शुभ अच्छाई के 'चाहिए' स्वभाव को भी समझता है। इसके साथ ही वह नैतिकता के उच्चतम मानक को भी समझता है, अर्थात् अच्छे कार्य करने हैं एवं बुरे कार्य से दूर रहना है को भी समझता है। (प्राकृतिक) नैतिक नियम का सर्वोच्च मानक हैः अच्छे कार्य करिये एवं बुराई को त्यागिये। और यह शुभ के 'चाहिए' लक्षण का परिणाम है।

अच्छे कार्य करने चाहिए एवं बुरे से बचना चाहिए। अच्छाई की शक्ति यह है कि वह व्यक्ति को अच्छे कार्य करने के लिए उकसाती है। व्यावहारिक बुद्धि के सभी मानकों की वैधता शुभ के अभिप्राय के परिज्ञान के अधीन होती है। शुभ सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है। अर्थात् शुभ का प्रकाश सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है।

4.2 नैतिक नियम की परिभाषा

अच्छाई करना और बुराई से बचना नैतिकता या नीतिशास्त्र का सर्वप्रमुख सिद्धान्त है। और यह सिद्धान्त अच्छाई के 'चाहिए' स्वभाव पर आधारित है। इसी एक सिद्धान्त से सहज तर्कबुद्धि अपने अन्य वैयक्तिक मानकों को ग्रहण करती है। प्राकृतिक नियम के सभी वैयक्तिक नियम उस सीमा तक परम सिद्धान्त की तार्किकता में सहभागी होते हैं, जहाँ तक वे एक नैतिक नियम के परम सिद्धान्त को संदर्भित करते हैं।

किसी भी नीति–दर्शन की पूर्वमान्यताएं हैंः अ) सत्य को ग्रहण करने की व्यावहारिक बुद्धि की क्षमता और, ब) मानव स्वभाव का मूल आधार (आश्रय) जो सभी ऐतिहासिक परिवर्तनों के बाद भी ज्यों का त्यों रहता है। विशुद्ध नैतिक सिद्धान्त को अपने सिद्धांतों की सार्वभौम वैधता में विश्वास होना अनिवार्य है।

प्राकृतिक नैतिक नियम की पूर्वमान्यता है कि मानव की एक सामान्य प्रकृति है जो नियत रहती है। इसी सामान्य मानव प्रकृति से ही नैतिक सिद्धान्त प्रसूत हुए हैं। इस प्रकार, प्राकृतिक नैतिक नियम का आधार मानव की सामान्य प्रकृति है। नैतिक नियम का अस्तित्व व्यावहारिक बुद्धि से पहले है। व्यावहारिक बुद्धि इनकी खोज इसलिए करती है क्योंकि प्राकृतिक नैतिक नियम मानव की मूल संरचना पर आधारित हैं।

सम्वेगवाद के विपरीत, नैतिक नियम (वह नैतिक सिद्धान्त जिसका मानना है कि नैतिकता सम्वेग का मुद्दा है) मानव होने की प्रकृति पर आधारित हैं।

प्राकृतिक नैतिक नियम अथवा पद 'प्रकृति द्वारा' नैतिक कर्ता होने के लिए न्यूनतम पूर्व–मान्यताओं, अर्थात् स्वतन्त्रता और बुद्धि, को प्रस्तुत करते हैं। इनके बिना कोई नैतिक कर्ता नहीं हो सकता है। प्रत्येक संस्कृति एवं काल में मानव होने के लिये प्राकृतिक नैतिक नियम के रूप में न्यूनतम पूर्व मान्यताएं समान होती हैं। ये न्यूनतम शर्तें प्राकृतिक नियम के मूलभूत आदेशों द्वारा सुरक्षित की जाती हैं।

प्राकृतिक नैतिक नियम नैतिक सिद्धान्त के रूप में सभी लोगों के लिए वैध होते हैं। क्योंकि मनुष्य होने के लिए यह अनिवार्य न्यूनतम संकेत लिये रहते हैं। और यह मानव के सर्वाधिक मूल क्षेत्र को सुरक्षित रखता है। प्राकृतिक नियम की न्यनतम शर्त सबके लिए समान है और यह सब जगह समान रूप से लागू होती है और दैवीय हस्तक्षेप से स्वतंत्र होती है। यह सभी मनुष्यों के लिए उपलब्ध है।

नैतिक दर्शन के रूप में प्राकृतिक नैतिक नियम सापेक्षतावाद का विरोधी है और नैतिक मानदंड की सत्यता और सार्वभौम वैधता में विश्वास करता है। अपने समाज की विचारधारा की आलोचना के लिए व्यक्ति को प्राकृतिक नियमों की आवश्यकता होती है। प्रकृतिक नियमों की अनुपस्थिति में व्यक्ति नरभक्षी एवं लोकतांत्रिक दोनों समाजों को समान महत्व देने के लिए बाध्य होगा। प्राकृतिक नियम वैयक्तिक नैतिक नियमों और नागरिक नियमों (सामाजिक नियमों) का अनिवार्य आधार होना चाहिए। और इन्हें प्रत्येक धार्मिक आधार से भी स्वतंत्र होना चाहिए। इन्हें मानव मात्र के लिए सुलभ होना चाहिए। यह मानव को मानव होने के कारण सुगम्य होना चाहिए।

थॉमसवादी प्राकृतिक नैतिक नियम व्यक्ति के संतुष्ट जीवन की ओर सहज झुकाव तथा प्राकृतिक बुद्धि का मिश्रण है। प्राकृतिक नियम तथा व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य मानव के स्वभाव में सहज ही निहित है। व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य होते हैं और प्रवृत्ति मानव को उनकी ओर ले जाती है। उद्देश्य की शुभ के रूप में पहचान व्यावहारिक बुद्धि स्वभाव से ही, बिना किसी अन्य सहायता से, कर लेती है।

प्रवृत्तियाँ लक्ष्य की ओर संकेत करती हैं। लक्ष्य जीवन में संपूर्णता लेकर आते हैं। अच्छे और बुरे का ज्ञान प्रवृत्ति के स्तरानुसार होता है। व्यक्ति में सैद्धान्तिक रूप से तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं: प्रथम चरण की प्रवृत्तियाँ, वे प्रवृत्तियाँ होती हैं जो सभी पदार्थों में समान होती हैं। इनका सम्बन्ध स्व–संरक्षण से होता है। द्वितीय चरण की प्रवृत्तियाँ वे प्रवृत्तियाँ होती हैं जो सभी जीव जंतुओं में समान होती हैं तथा जिनका सम्बन्ध सामाजिक रहन–सहन, प्रजनन तथा शिशुओं की शिक्षा से है। तृतीय तरण की प्रवृत्तियाँ वो प्रवृत्तियाँ हैं जो व्यक्ति विशेष में होती हैं। इनका सम्बन्ध ज्ञान के प्रयास से है जिसके अन्तर्गत ईश्वर के बारे में ज्ञान और दूसरे के साथ सहभागिता के साथ रहने की इच्छा आती है। सहभागिता के साथ रहने की इच्छा से आशय अज्ञान के परिहार से है। इसके अन्तर्गत किसी सहभागी को कष्ट न पहुँचाने की प्रवृत्ति सम्मिलित है।

व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ व्यावहारिक बुद्धि के आदेश के अनुकूल होती हैं। लेकिन इन दोनों के बीच यथार्थ सम्बन्ध क्या है? मध्यकालीन दार्शनिक थामस के व्याख्याकारों ने प्रवृत्तियों और व्यावहारिक बुद्धि के बीच तीन प्रकार के सम्बन्ध प्रस्तावित किए हैं: प्रवृत्तियाँ केवल ढाँचा (रूपरेखा) होती हैं। व्यावहारिक बुद्धि निर्णायक होती हैं। प्रवृत्तियाँ

व्यावहारिक बुद्धि को सूचनाएं देती हैं। और, अंत में एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ प्रवृत्तियाँ जीवन के विस्तृत उद्देश्य की जानकारी देती हैं तथा व्यावहारिक कारण उन्हें स्वीकार कर लेते हैं। जर्मन नीतिशास्त्री एबरहार्ड सॉकेन्हॉफ के अनुसार, व्यावहारिक बुद्धि को केवल अनुसमर्थन कारक की तरह से ही नहीं देखना चाहिए; तथा न ही ये प्रवृत्तियाँ असीमित मात्रा की कच्ची सामग्री हैं जिसे व्यावहारिक बुद्धि के द्वारा आकार दिया जाता है। सॉकेन्हॉफ के अनुसार, व्यावहारिक बुद्धि का सर्वोच्च नियम व्यक्तिगत नैतिक मानकों में विघटित हो जाता है तथा प्रवृत्तियों के साथ मिलकर ये बुद्धि के द्वारा सूचित एकता स्थापित करते हैं। बुद्धि उस संगीत चालक की तरह है जो प्रवृत्तियों को व्यवस्थिति स्वर में बांध कर रखता है। तथा, बुद्धि उस लेखक की तरह हैं जो पुस्तक के प्रारंभिक प्रारूप (प्रवृत्तियों) को सुसंगत लिखित पुस्तक में बदल देता हैं। बुद्धि प्रवृत्तियों के बारे में बताती हैं। और वे व्यक्तियों की क्रिया का मानक बन जाती हैं।

प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ केवल छवि रूप में मनुष्य के होने के संपूर्ण आकार को दिखाती हैं। बुद्धि का कार्य उस लक्ष्य की ओर जाने के लिए साधन की खोज करना है; लक्ष्य की अनुभूति के लिए व्यक्तियों के आचरण के मानकों की खोज करना। व्यक्ति को चाहिए कि वह बुद्धि के प्रकाश में, जीवन के उद्देश्यों की अनुभूति के लिए प्रत्यक्ष क्रियाओं को चुने।

केवल वे प्रवृत्तियाँ ही जो बुद्धि के अनुरूप हैं प्राकृतिक नैतिक नियम के अन्तर्गत आती हैं। प्राकृतिक नैतिक नियम का सर्वोच्च सिद्धान्त, अर्थात् 'अच्छा करिये एवं बुरे का त्याग करिये' बहुत सारे व्यक्तिगत मानकों में विभक्त हो जाता है ताकि व्यक्ति जीवन–संतुष्टि की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो सकें।

4.3 बुद्धि एवं नैतिकता

व्यक्ति नियमों का पालन इसलिये करता है क्योंकि यह उचित है। प्रत्येक नियम का एक बौद्धिक कारण होता है। किसी नियम की बाध्यकारी शक्ति बाहर से नहीं आती है बल्कि बुद्धि के आंतरिक बाध्यात्मक चरित्र से आती है। थॉमस एक्विनास के अनुसार, मानव–कृत्य के नियम एवं मापक ही बुद्धि है। नैतिकता का एक मात्र मानदण्ड यह है कि मानव क्रिया बुद्धि के अनुरूप है कि नहीं, अर्थात् बुद्धि को क्रिया स्वीकार्य है या नहीं।

नैतिक मूल्यों की उत्पत्ति और वैधता व्यावहारिक बुद्धि से आती है। इसी कारण से बुद्धि ही नियम को नियम बनाती है। बिना बुद्धि के कोई नियम नहीं होता है। यह ईश्वरीय बुद्धि में व्यक्ति की सहभागिता है जो व्यक्ति को प्राकृतिक नियम का पालन करने में सक्षम बनाती है। बुद्धि और इसका अव्याघात का नियम अन्ततः किसी नैतिक व्यवस्था की अंतर्वस्तु का निर्धारण करते हैं। अनैतिक कार्य वह है जो बुद्धि के विपरीत है। यह बुद्धि के विरूद्ध कार्य है। यह असम्भव है कि नैतिक नियम एक स्थान पर महत्वपूर्ण हो तथा दूसरे स्थान पर अमहत्वपूर्ण या विरोधी हो।

थॉमस एक्विनास व्यक्ति में बुद्धि विभाग के दो पक्ष देखते हैं; सैद्धान्तिक बुद्धि एवं व्यावहारिक बुद्धि। वे दोनों को बराबर महत्व देते हैं। कोई भी बुद्धि दूसरे के अधीन नहीं होती है। ये व्यक्ति में दो विभाग की तरह नहीं है बल्कि आत्मा की एक क्षमता की तरह हैं जो कि विभिन्न विषयों की ओर उन्मुख हैंः सैद्धान्तिक बुद्धि अपने प्रयोजन

के लिए स्वंय सिद्ध सत्य की ओर जाती है जबकि व्यावहारिक बुद्धि उस सत्य की ओर जाती है जिसे सिद्ध करना होता है. जिस पर कार्य करना होता है।

यह तथ्य कि दोनों विभाग एक ही आत्मा से हैं, उनकी विशिष्टता को समाप्त नहीं करता है। इन दोनों के अपने विशिष्ट लक्ष्य होते हैं। वे एक दूसरे के अधीन न होकर एक दूसरे के सहायक होते हैं। इन दोनों के बीच विशिष्टता को इस तथ्य से भी देखा जा सकता है कि इनमें से प्रत्येक के अप्रर्दशनात्मक प्राथमिक सिद्धान्त होते हैं वे अपने स्वयं के स्रोत से उत्पन्न होते हैं।

सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक बुद्धि एक दूसरे के इस बात में पूरक होती हैं कि वस्तुएं अनुस्थापन में या तो सैद्धान्तिक बुद्धि एक दूसरे से इस बात में पूरक होती हैं कि वस्तुएं अनुस्थापन में या तो सैद्धान्तिक बुद्धि या व्यावहारिक बुद्धि के अन्तर्गत आती हैं। सैद्धान्तिक बुद्धि के अन्तर्गत आने वाली वस्तुएं अपने आप में सत्य होती है। व्यावहारिक बुद्धि की वस्तु अच्छी होती है। सत्य सैद्धान्तिक बुद्धि का विषय इसलिये होता है क्योंकि उसकी अभिलाषा करना शुभप्रद होता है। व्यावहारिक बुद्धि की वस्तु शुभ होती है और उसकी खोज सत्य या सत्य के दृष्टिकोण के अन्तर्गत होती है।

सैद्धान्तिक बुद्धि के प्राथमिक सिद्धान्त सत्यापनीय नहीं हैं। वे स्वयं प्रत्यक्ष हैं एवं उन्हें अन्त र्ज्ञान के द्वारा जाना जाता है। इसी प्रकार से व्यावहारिक बुद्धि के प्राथमिक सिद्धान्त भी हैं। व्यावहारिक बुद्धि के अपने स्वयं के स्वभाविक रूप से ज्ञात और असत्यापनीय सिद्धांतों को धारण किये रहती है। वे सैद्धान्तिक बुद्धि से नियमित या गृहीत नहीं होते हैं। व्यावहारिक बुद्धि के प्राथमिक सिद्धान्त प्राकृतिक नैतिक नियम के प्राथमिक सिद्धान्त हैं। इन्हें प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। ये सहज ज्ञान के रूप में जाने जाते हैं।

प्राकृतिक नियम सर्वोच्च सिद्धान्त (शुभ करो और अशुभ का परिहार करो) के प्रकाश में शुभ को खोजने में व्यावहारिक बुद्धि से सम्बन्धित होते हैं। शुभ के लिए अतिरिक्त ढंगों और साधनों की खोज करते हैं। इन दोनों कार्यों का सम्बन्ध व्यावहारिक बुद्धि से हैं। व्यावहारिक बुद्धि अपने क्रियाकलापों को उस संपूर्णता तक पहुँचाती हैं जहाँ पर यह इच्छित शुभ को अनुभूत कर सके। इसे व्यावहारिक बुद्धि का नियम लक्षण भी कहते हैंः अर्थात् व्यावहारिक बुद्धि और सैद्धान्तिक बुद्धि के सार्वभौमिक प्रस्तावों के मध्य अन्तर है।

व्यावहारिक बुद्धि के निर्णय में सैद्धान्तिक बुद्धि के बराबर निश्चितता नहीं होती है, क्योंकि व्यावहारिक बुद्धि के निर्णय अनिश्चित घटनाओं से सम्बन्धित होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ये वैध नहीं हैं।

4.4 सार्वभौमिकता एवं (प्राकृतिक) नैतिक नियम

कोई भी व्यक्ति सार्वभौमिक नीतिशास्त्र का प्रयोग एवं उसके बारे में विचार तभी कर सकता है जब वह सार्वभौमिक वैधता को पूर्व रूप से स्वीकार करता हो तथा प्रत्येक मनुष्य में बुद्धि क्षमता को मानता हो। व्यक्ति की स्वभाविक प्रकृति बदलती नहीं है, इसी प्रकार से प्राकृतिक नियम भी अपरिवर्तनशील होते हैं।

सिर्फ व्यावहारिक बुद्धि के सर्वोच्च सिद्धान्त और उनके परिणाम ही सार्वभौमिक रूप से वैध होते हैं, व्यावहारिक बुद्धि के श्रेष्ठ सिद्धान्त सभी के लिए वैध होते हैं क्योंकि वे

मनुष्य के अस्तित्व की तार्किकता में स्थापित होते हैं। द्वितीयक प्राकृतिक नियम वे नियम हैं जिनकी उत्पत्ति तीन प्राथमिक नियमों से होती है। वे तीन प्राथमिक नियम हैं; अच्छा करो और बुराई का परित्याग करो, सर्वोच्च नियम (दूसरों के साथ वैसा व्यवहार कीजिए जैसा आप अपने साथ चाहते हैं), तथा अपने पड़ोसियों से प्यार करो। ये नियम सभी मनुष्य को ज्ञात हैं। लेकिन अपवाद भी हैं। सैद्धान्तिक बुद्धि और उनके निष्कर्ष सभी के लिए वैध होते हैं (जैसे कि, समबाहु त्रिकोण के सभी कोण समान होते हैं) लेकिन व्यावहारिक बुद्धि के परिणाम अनिश्चित होते हैं, अर्थात् वे सभी के लिए अनिवार्य रूप से वैध नहीं होते हैं।

एक बार जब बुद्धि सत्य का पता लगा लेती हैं तब ये सभी के लिए वैध हो जाते हैं। ''यह सत्य के ऐतिहासिक बोध की संरचना के पूर्णतया अनुकूल होता है। इस प्रकार की सीमाओं का पारगमन किसी विशेष समय–काल पर होता है। एक बार जब इस प्रकार के पारगमन की खोज हो जाती है तो मानव की अन्तरात्मा के विचार में, इसका सम्बन्ध मानवता के स्थायी अधिग्रहण से होता है तथा यह सभी जगह वैध होता है'' (सॉकेन्हॉफ, पृ. 139)। सत्य की खोज जब एक बार हो जाती है तब यह सभी के लिए होता है तथा यह ऐतिहासिक विशिष्टताओं से स्वतंत्र होता है। यह ऐतिहासिक अस्तित्व की पहचान के अधीन नहीं होता है। यह ऐतिहासिक काल और युग से परे होता है। मैक्स शिलरर के अनुसार, मूल्य की खोज जितनी शीघ्र हो जाती है उतनी शीघ्र इसकी वैधता सभी व्यक्तियों और सभी कालों के लिए हो जाती है। इसी कारण सत्य के आवश्यक पक्ष की खोज हुई। एक अन्य जर्मन दार्शनिक ई ट्रोल्टेच का भी यही मत है।

व्यावहारिक बुद्धि के सभी निर्देश नियम की विशेषता को नहीं मानते हैं। केवल सार्वभौमिक प्रस्तावों आदेशों का इस पर अधिकार होता है। थॉमस एक्विनास के *समा थियोलॉजिका* (*Summa Theologica*) के प्रश्न–94, अनुच्छेद 4 और 5 का उद्देश्य यह दिखाना है कि सार्वभौमिक प्राकृतिक नियम दो शाखाओं में बंटा हुआ है।

व्यावहारिक बुद्धि सार्वभौमिक प्राकृतिक नियमों की खोज करती है। पुनः व्यावहारिक बुद्धि ही गैर सार्वभौमिक मानकों की खोज करती है तथा जो सभी परिस्थितियों में लागू होते हैं। इस प्रकार से व्यावहारिक बुद्धि के निर्णयों या नियमों के स्तर होते हैं।

यदि यह सत्य है कि बुद्धि का सार्वभौमिक प्रयोजन (महत्व) होता है तब प्राकृतिक नियम स्वयं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्राकृतिक नियम मानव की मर्यादा को व्यक्त करते हैं। प्राकृतिक नियम अधिकारों एवं कर्तव्यों के लिए आधार बनाते हैं। एक सीमा तक प्राकृतिक नियम सार्वभौमिक हैं एवं उनका अधिकार सभी मनुष्यों पर है। यह विचार कि सत्य सभी मनुष्यों से सम्बन्धित होता है, मनुष्यों को विशेष बनाता है। यह कहना की यह प्रत्येक समय में सभी को स्वीकार्य नहीं रहा है इसे अवैध नहीं ठहराता है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) प्राकृतिक नैतिक नियम क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्राकृतिक नैतिक नियम सार्वभौमिक रूप से वैध क्यों है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं परिवर्तन

व्यावहारिक बुद्धि के मानकों की विभिन्न स्तरीय निश्चितता और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तिगत साकार मानकों की क्षीण निश्चितता हमें यह सोचने पर बाध्य करती है कि प्राकृतिक नियम सर्वोच्च सिद्धान्त से निर्मित एक खाका है तथा इसके तत्वाधान में ही बुद्धि को व्यक्तिगत मानकों को खोजना होता है। प्राकृतिक नियम केवल निर्धारित मानकों की सीमित प्रणाली नहीं है। केवल वे मानक जो 'प्रकृति के अनुसार' होते हैं, अपरिवर्तनशील होते हैं। किन मूर्त क्रियाकलाप को हत्या, चोरी और व्यभिचार कहा जयेगा, यह श्रेष्ठ और व्यक्तिगत मानकों दोनों के अनुसार बदल जाते हैं।

नीतिशास्त्र इतिहास के परे भी जाता है। हालाँकि, इसके व्यक्तिगत मानकों को प्रत्येक परिस्थितियों में वैध होने की आवश्यकता नहीं है। व्यावहारिक बुद्धि के मानकों की परिवर्तनशीलता और सीमितता व्यक्तियों की नैतिक मानकों को ग्रहण करने की जन्मजात अक्षमता के कारण नहीं होती है, न ही यह दोषपूर्ण अज्ञानता के कारण होती है। यह परिस्थितियों की आकस्मिकता एवं विविधता के फलस्वरूप होती है। इसके अतिरिक्त, मानव व्यवहार कुछ निश्चित अर्थों में बदलता रहता है। प्रकृति के बहुत सारे नियम हैं जिससे व्यक्तिगत और पवित्र नियम एक हो जाते हैं तथा ये नियम का सही अर्थ बनाते हैं तब ये बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप होते हैं। उदाहरण के लिए, पड़ोसी से ईर्षा न करने का नियम हत्या के निषेध के साथ जोड़ा जाता है। इसी प्रकार से चोरी न करने से सम्बन्धित निषेध भी है। व्यावहारिक बुद्धि सार्वभौमिक नियमों को जानती है और विशिष्ट परिस्थिति में सार्वभौम नियमों की अनुभूति के लिए मूर्त मानकों को प्राप्त करती है। यह तथ्य कि मूर्त मानक स्थान के अनुसार बदल जाते हैं तथा सर्वभौमिक मानकों के समान निश्चितता को प्रदर्शित नहीं करते हैं, प्राकृतिक नियम की कमजोरी या दोष नहीं है। बल्कि, ऐसा इस तथ्य के कारण है कि बुद्धि सीमित वास्तविकता है और ठोस परिस्थितियां उच्च स्तर को निश्चतता प्रदान नहीं करती हैं।

बुद्धि विशिष्ट परिस्थितियों में विशिष्ट मानकों की पहचान करती है। संवेदनशील व्यक्तियों का अनुभव यहाँ पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुछ विशिष्ट परिस्थितयों में सार्वभौमिक नियमों के कुछ अपवाद होते हैं। उदाहरण के लिए, एक सर्वमान्य तथ्य

है कि उधार ली गयी वस्तु या सामान जो किसी ने सुरक्षित रखने के लिए दिया है उन्हें वापस लौटा देना चाहिए। लेकिन व्यक्ति को उस व्यक्ति को हथियार आसानी से नहीं लौटाना चाहिए जो शराब पिये है और किसी को मारने की इच्छा रखता है।

जर्मन के नीतिशास्त्री एबरहार्ड सॉकेन्हॉफ के अनुसार, नियमों की वह सूची जो बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार नये नियमों को समाहित नहीं कर पाती है, अतर्कसंगत बन जाती है। मानवाधिकारों की तालिका, जो प्रत्येक समय के लिए वैध हो, को लिखना असंभव है क्योंकि सम्पूर्ण वास्तविकताओं को समझना असंभव होता है। नैतिक नियम अधिकारों की परिपूर्ण तालिका नहीं है बल्कि यह बुद्धि की शक्ति जो सार्वभौमिक सिद्धांतों की खोज करती है। ये सिद्धान्त विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न रूप ले लेते हैं।

नैतिक नियम उस ऐतिहासिकता का विरोध करता है जिसका मानना है कि व्यक्ति एक निरन्तर विकसित होता जीव है तथा उसे इतिहास के द्वारा ही प्रकट किया जा सकता है। ऐतिहासिकता अपरिवर्तनीय मानव प्रकृति के अस्तित्व में विश्वास नहीं करती है। व्यक्ति ऐतिहासिकता का प्रतिरोध करता है और कहता है कि एक सर्वनिष्ठ तत्वमीमांसीय मानव प्रकृति होती है और यह ऐतिहासिक अवस्थाओं में ही प्रदर्शित होती है। प्रकृति इतिहास में शुरू से अंत तक तत्त्वतः समान रहती है। नैतिक नियम, जिसकी खोज मानव करता है, भी ऐतिहासिक परिस्थितियों में उद्भूत हैं। लेकिन, यह तथ्य न ही सर्वनिष्ठ मानव प्रकृति के अस्तित्व का खण्डन करता है और न ही सार्वभौमिक नैतिक नियमों का।

इतिहास मानव और उसके व्यवहार का एक प्रमुख आयाम हैं। इसलिये उसे जो मानव में तथा उसके व्यवहार में स्थाई हैं को एतिहासिक अभिव्यक्ति में ही देखा जा सकता है। मानव इतिहास में रहता है। वह इतिहास के वृत्तांत से मानव नहीं बनता है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार अपने शरीर–आत्मा की संरचना के अनुसार इतिहास बनाता है।

प्रकृति और इतिहास एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। मानव एक ऐतिहासिक सत्ता है अर्थात् वह अपने आप को इतिहास में सीमित सत्ता के रूप में अनुभूत करता है। मानव की बुद्धि भी एक ऐतिहासिक वास्तविकता है तथा यह स्वयं को ऐतिहासिक सन्दर्भ में अनुभव करती है। वह पवित्र आत्मा की सीमा में नहीं रहती है। इतिहास मानव और उसके व्यवहार के लिए बहुत आवश्यक है। अतः, प्राकृतिक अधिकार, जैसे कि शुभ और अशुभ की नैतिक कसौटी के विचार जो प्रत्येक समय और काल को आगे बढ़ाते हैं, स्वयं को इतिहास में प्रकट करता है। यद्यपि, ऐतिहासिक परिस्थितियों पर बुद्धि की निर्भरता सत्य को खोजने की क्षमता को नगण्य नहीं करती है न ही इसका अर्थ यह है कि ऐतिहासिक संदर्भों में खोजे गये सत्य केवल और केवल उस विशेष के लिए ही मान्य होते हैं।

बुद्धि इतिहास के अनुभव पर आधारित होती है। यह बुद्धि ही मनुष्य को प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार करती है। बुद्धि के साथ मनुष्य इतिहास का भाग बनता है। बुद्धि ही मनुष्य को इतिहास से परे जाने में सहायता करती है। ऐतिहासिक घटनाओं और बदलावों की अत्यधिक तीव्रता प्राकृतिक नियम को सापेक्ष बनाती है। यह सत्य है कि नीतिपरक अन्तर्दृष्टि प्रत्येक काल में मान्य होती है। लेकिन इसकी ऐतिहासिक अनुभूतियां मूर्त परिस्थितियों में सामंजस्य बैठाने से सम्बधित होती है।

4.6 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं मानव गरिमा

मानव जाति में एक आभ्यन्तर पक्ष होता है। इसके केन्द्र में मानव व्यक्ति होता है। यह ही नैतिकता का उद्देश्य है कि उस पक्ष की रक्षा करें। प्राकृतिक नियम की न्यूनतम आवश्यकताएं ही मानव अधिकार और मानव गरिमा की न्यूनतम आवश्यकताएँ होती हैं। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि नैतिकता के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती है। और इसी प्रकार से मानव गरिमा एवं अधिकारों को मानने के लिए एवं माँग करने के लिए भी कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं। मानव गरिमा एवं अधिकार सार्वभौमिक होते हैं और ये किसी भी व्यक्ति अथवा सरकार द्वारा अभियाचित हो सकते हैं। मानव गरिमा का आदर सिर्फ मानव की आध्यात्मिक शक्तियों एवं उसके विश्वास का ही आदर नहीं है। यह मानव की संपूर्णता, उसके शरीर, आत्मा का आदर है। मानव इस संसार में अपना जीवन एक देवदूत की तरह ही नहीं बिताता है बल्कि एक मूर्त व्यक्ति के रूप में बिताता है।

नैतिक नियम में अधिकार एवं नैतिकता एक–दूसरे से जुड़े हैं। अधिकार वे नैतिक दावे होते हैं जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों पर करता है। ये दावे उस सीमा तक विस्तारित होते हैं जब प्राकृतिक नियम अधिकारों को व्यावहारिक बुद्धि के सर्वोच्च सिद्धान्त से निकलते हुए मानते हैं और जब नैतिकता स्वंय व्यावहारिक बुद्धि में होती है, और अधिकार नैतिकता से सीधे जुड़े होते हैं। मानव अधिकार एवं नीतिशास्त्र एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। ये प्राथमिक लक्ष्यों एवं जीवन के मूल्यों की रक्षा करते हैं। मानव अधिकार, मूल्यों की तरह, व्यावहारिक बुद्धि के सिद्धांतों की ऐतिहासिक अभिव्यक्ति होते हैं।

प्रत्येक काल में मानव अधिकार वह न्यूनतम शर्त होती है, जिसके अन्तर्गत मानव को एक नीतिपरक विषय के रूप में देखा जाता है और वह अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। प्राकृतिक मानव अधिकार नीतिपरक होने की न्यूनता को प्रदर्शित करते हैं। लेकिन इसका अध्ययन किसी भी मानव–शास्त्र, जो एक संपूर्ण मानव जीवन को प्रदर्शित करता है, में किया जा सकता है।

प्राकृतिक मानव अधिकार नियमों का ज्ञान है, उस नैतिक नियम का ज्ञान है जो मानव प्रभुत्व से स्वतंत्र होता है। अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार का गठन प्राकृतिक अधिकारों के आधार पर हुआ है। प्राकृतिक अधिकार अपने आप से आगे का संकेत करते हें। वे धर्मों की धनाढ्यता की ओर मानव जीवन को सम्पूर्ण करने वाले ढ़ंगों को प्रस्तुत करने की ओर संकेत करते हैं।

राज्य विधि–शासन को संभालते हैं। विधि–शासन का प्रमुख उद्देश्य मानव को अमूल्य जीवन की अनुभूति कराना है। यह मानव को स्वयं को एक नीतिपरक जीव समझने के लिए आवश्यक न्यूनतम स्थान प्रदान करने की गारंटी देता है। विधि–शासन में मानव के अलग न किए जा सकने वाले अधिकारों एवं उसके कर्तव्यों को स्वीकार करता है।

मानव अधिकार स्वतन्त्रता की अपेक्षा करते हैं तथा बुद्धि में समाहित होते हैं, अधिकार के प्रत्यय सम्बन्धी समझ में हुए बदलाव के कारण नये अधिकारों की खोज सम्भव हुई हैं। नयी अन्तर्दृष्टियों और नयी परिस्थितियों के अनुसार अधिकार (नागरिक अधिकार) बदल सकते हैं। नागरिक अधिकार प्राकृतिक अधिकारों के अधीन होते हैं। जर्मन नीतिशास्त्री, अर्नेस्ट वॉल्फगैंग बोकेनफोर्ड के अनुसार, प्राकृतिक नियम और अधिकार व्यावहारिक बुद्धि के विचार करने के साधन हैं। मानव जीवन के मूलभूत लक्ष्य के

प्रकाश में यह स्थापित मानव अधिकोरों को न्यायसंगत ठहराता है। यह उनका विरोध भी करता है तथा इसके द्वारा ही मानव अधिकारों के विकास के लिए रास्ता तैयार करता है।

4.7 प्राकृतिक नियम एवं आन्तरिक अशुभ की संकल्पना

यदि कुछ आंतरिक रूप से शुभ है तो तर्कतः कुछ आन्तरिक अशुभ भी होना चाहिए, क्योंकि आन्तरिक शुभ पर आघात करने का अर्थ है आन्तरिक अशुभ कार्यों को स्थापित करना। आन्तरिक अशुभ शब्द का प्रयोग वहाँ पर अपरिहार्य होता है जहाँ मानव के नीतिपरक विषय का सम्बन्ध आपसी आदर से होता है।

आन्तरिक अशुभ का विचार केवल चर्च का विशेष शिक्षण नहीं है। यह उस लम्बी नैतिक परम्परा की सामान्य विशेषता है जिसकी शुरूआत अरस्तू से होती है तथा ऑगस्टाइन, थॉमस अक्वाइनस, कान्ट तथा अन्य सभी गैर–उपयोगितावादी अर्थात् आज के नीतिशास्त्रियों के शिक्षण में जारी है।

किसी भी व्यक्ति को आन्तरिक बुराई का कार्य नहीं करना चाहिए। आन्तरिक बुराई का कार्य वह है जो निरपेक्ष अधिकारों अर्थात् दूसरे व्यक्ति के अहरणीय अधिकारों पर इस अज्ञानता के साथ आघात करता है कि इस प्रकार के उल्लंघन का पूरे समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा। आन्तरिक शुभ मानव के अस्तित्व के लिए आवश्यक न्यूनतम परिस्थितियों पर आघात करता है। ये न्यूनतम परिस्थितियाँ नीतिपरक विषय से मुक्त आत्म–संकल्प के लिए संभावनाएँ हैं। आन्तरिक रूप से शुभ कार्य व्यक्तिगत गरिमा पर आघात करता है। इसके ज्वलंत उदाहरण बलात्कार एवं उत्पीड़न है।

प्राकृतिक नियम के नकारात्मक आदेश आन्तरिक रूप से अशुभ कार्यों का निषेध करते हैं। जिस प्रकार से मानव गरिमा का प्रत्यय, मानव गरिमा की प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक सभी कानूनों की गणना करने में सक्षम नहीं है, उसी प्रकार से आन्तरिक अशुभ का विचार, आंतरिक अशुभ के कार्यों की सम्पूर्ण सूची बनाने में सक्षम नहीं है। आंतरिक अशुभ का प्रत्यय मानव को ऐसे विचारों/कार्यों को स्मृत कराता है जो उसे कभी नहीं करने चाहिए, अधिक विस्तार से गणना किये बिना मनुष्य को प्रत्येक कालध्समय में आंतरिक अशुभ से बचना चाहिए।

बलात्कार, हत्या (निर्दोष और मासूम मानवों का वध), उत्पीड़न, दूसरों का अविश्वास (वचन का उल्लघंन) और विवाह में यौन अविश्वास आदि कुछ आंतरिक रूप से अशुभ कार्य हैं। बलात्कार अशुभ इसलिये होता है क्योंकि इसमें मानव की गरिमा का उल्लंघन होता है। यह गरिमा स्वतंत्रता एवं बुद्धि में समाहित होती है। बलात्कार कभी भी मानव गरिमा के सामंजस्य में नहीं होता है।

निर्दोष का अपना अधिकार है, ऐसा अहरणीय अधिकार जो समुदाय की भलाई के साधन के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता है। अन्य की गरिमा और आंतरिक मूल्य और अन्य की स्वतः मूल्यपरकता ही अन्य व्यक्तियों को साध्य के रूप में प्यार करने का सत्तामीमांसीय आधार होता है। मासूम का उत्पीड़न एक प्रकार के आंतरिक अशुभ का उदाहरण है जो कि किसी भी प्रकार के शुभ के लिये नहीं किया जाना चाहिए। इसकी अशुभता इस तथ्य में समाहित है कि यह निरपेक्ष अधिकार, ऐसा अधिकार जो व्यक्ति को स्वयं को पहचाने में सहायता करता है, का उल्लंघन करता है। उत्पीड़न निर्दोष की गरिमा के विरूद्ध कृत्य है।

सामान्य परिस्थितियों में निर्दोष की हत्या का निषेध वैध होता है लेकिन सीमान्त क्षेत्रों के सन्दर्भ में एवे काल्पनिक परिस्थितियों में ऐसा नहीं होता है। इस निषेध के कुछ अपवाद होते हैं। उदाहरण के रूप में, सेना का जवान अपने साथी को इसलिये मार देता है ताकिम वह शत्रु के हाथों में न आ जाये। अन्यथा उसका उत्पीड़न होगा और उसकी हत्या कर दी जायेगी। इसी प्रकार से दुर्घटना के पश्चात जलती कार में बैठे व्यक्ति और जिसे बाहर नहीं निकाला जा सकता है को मारना भी है। लेकिन यहाँ तक कि ये हत्याएं भी उक्ति 'किसी की हत्या मत करो' के विरूद्ध है। शरीर मानव–व्यक्ति की अभिव्यक्ति होता है। हत्या के निषेध का सम्बन्ध मानव के शारीरिक अस्तित्व से है। मानव को एक बौद्धिक प्राणी कहा जाता है। लेकिन वह शरीर के बगैर बौद्धिक रूप से जीवित नहीं रह सकता है। इस प्रकार से हत्या न करने के आदेश का सम्बन्ध मानव की गरिमा का सम्मान करने से है।

इस सन्दर्भ में सॉकेन्हॉफ प्रयोजनमूलकता एवं नीतिपरकता दोनों का उल्लेख करते हैं। व्यक्ति के लिए प्रयोजनमूलकता के प्रति निष्ठावान होते हुए आंतरिक अशुभ के विचार का बचाव करना संभव नहीं है। प्रयोजनमूलक व्यक्ति निर्दोषों की हत्या नहीं किये जाने संबंधी आदेश का आदर करते हो सकते हैं। लेकिन उनके इस दृढ़ विश्वास का आधार आन्तरिक अशुभ की स्वीकारोक्ति के कारण नहीं हैं। बल्कि वे ऐसा इसलिये सोचते हैं क्योंकि उनके विचार में निर्दोषों की हत्या नहीं करने का आदेश समाज में लम्बे समय से अधिक लाभप्रद होगा। प्रयोजनमूलकता और नीतिपरकता दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ मानव जाति के अतिरिक्त अन्य जीवों से सम्बंधित शुभ पर विचार होता है वहाँ प्रयोजनमूलकता व्यवस्था में रहती है। लेकिन जब मानव जाति के बारे में, उनकी गरिमा के बारे में, उनकी गरिमा के बारे में विचार होता है तब नीतिपरकता अत्यंत आवश्यक होती है। यह केवल आंतरिक रूप से अशुभ कार्यों की निकृष्टता के कारण होता है। कि व्यक्ति लम्बे समय तक आतंकवादियों एवं ब्लैकमेलरों के विरूद्ध लड़ सकता है।

4.8 प्राकृतिक नैतिक नियम की आलोचना

प्रधान नैतिक सिद्धान्त– अच्छा करो, बुरा से बचो– के प्रकाश में व्यावहारिक बुद्धि क्रियाकारी प्रवृत्तियों को निर्देशित करती है। व्यावहारिक बुद्धि कि निर्देश देने की क्षमता आज्ञा व्यवस्था की स्थापना में कार्य करने की इच्छाओं के आदेश पर निर्भर करती है। कार्येच्छाएँ नैतिकता पूर्व हैं। व्यावहारिक बुद्धि उन्हें व्यक्ति के उद्देश्य को पूरा करने का आदेश देती है। कार्येच्छाएँ अपना नैतिक गुण विवेक के माध्यम से प्राप्त करती हैं। विवेक उनमें अच्छे और बुरे का प्रतिमान निर्मित करता है।

मानव में कुछ नियामक शक्तियाँ होती हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता। वर्णनात्मक (Descriptive) अथवा भाववादी (Positive) विज्ञानों के ज्ञान के साथ तेरहवीं शती के एक्वीनास की तुलना में आधुनिक मानव नियामक शक्तियों/ कार्येच्छाओं को बेहतर समझने की स्थिति में है।

थॉमसवादी प्राकृतिक नैतिक नियम की अवधारणा की दूसरी आलोचना यह है कि यह चक्रक दोष (Petitio Principil) उत्पन्न करती है। इसका तर्क यह है; प्रकृति का प्रत्यय उस रिक्त आवरण की तरह है जो समाजशास्त्र एवं मानव विज्ञान की अनियंत्रित अंतर्वस्तुओं से भरा हुआ है तथा ये अंतर्वस्तुएँ मानव नीतिपरकता की गरिमा में अंतर्निहित होती हैं। चक्रक दोष शुद्ध रूप से इस तथ्य में है कि अंतर्वस्तु की

नीतिपरक गरिमा को सिद्ध करने की बजाय यह पूर्वकल्पित करता है कि आकस्मिक रूप से पूरित प्रकृति का प्रत्यय नैतिकता पूर्ण है।

लेकिन प्राकृतिक नियम के विचार की विभिन्न श्रेणियों का अस्तित्व चक्रक दोष के अभियोग का खण्डन करता है। यदि प्रकृति शब्द की अंतर्वस्तु स्वेच्छित रूप से पूरित है और बाद में इसमें नीतिपरक गरिमा आती है तब अंतर्वस्तु के प्रत्येक भाग में समान निश्चितता होनी चाहिए। लेकिन थॉमसवादी प्राकृतिक नैतिक नियम की अवधारणा में ऐसा नहीं होता है। यह सत्य नहीं है कि थॉमस प्रकृति के प्रत्यय के रिक्त आवरण किसी भी अंतर्वस्तु से पूरित हैं। बल्कि वे प्रकृति के प्रत्यय में नैतिकता की पूर्वधारणाओं की गणना करते हैं। व्यक्ति, का अस्तित्व बुद्धि तर्क से है और वह अपने अस्तित्व के लिए उत्तरदायी है। व्यक्ति को एक बौद्धिक प्राणी के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व के 'शुभ और सत्य' को पहचानना चाहिए तथा यह यथार्थ पहचान उसे संतुष्टि पाने में सहायता करती है। व्यक्ति की प्रवृत्ति शुभ और सत्य की ओर अग्रसर होने की होती है तथा बुद्धि इस शुभ और सत्य की पहचान करती है तथा उन्हें सहमति प्रदान करती है। अंत में, व्यक्ति स्वयं की अनुभूति जीव–आत्मा के यथार्थ रूप से दूसरे व्यक्तियों के सम्बंध में तथा स्वयं की आत्मा की शुभ और सत्य से अनूरूपता के सम्बंध में करता है। ये पूर्वधारणाएं केवल एक पक्षीय सिद्धान्त नहीं हैं। जिससे मानव पुनः एकपक्षीय मानकों का आहरण करता है। निःसंदेह ये ही वे यथार्थ परिस्थितियाँ हें जो नैतिकता को संभव बनाती हैं।

थॉमस के सिद्धान्त की तीसरी आलोचना यह है कि वे मानव की ऐतिहासिक/अपरिवर्तनीय समझ रखते हैं। इसका उत्तर यह है कि थॉमस मानव प्रकृति में स्वीकार करने योग्य परिवर्तनों को स्वीकार करते हैं। यह व्यावहारिक बुद्धि के दोनों स्तरों में प्रमाणित होता है। दूसरा स्तर विभिन्न परिस्थितियों में मानाकों के परिवर्तन को स्वीकार करता है और मानव प्रकृति को विभिन्न युगों/कालों में नये प्रकार से जीने की अनुभूति प्रदान करता है। जब थॉमस मानव प्रकृति में परिवर्तन की बात करते हैं तब उनका आशय यह नहीं होता है कि मानव परिवर्तन होकर मानव के अतिरिक्त कुछ और बन जाता है।

मानव प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है लेकिन प्रत्येक काल एवं संस्कृति में उससे एक अपरिवर्तनीय तत्व की अपेक्षा की जाती है। यह मानव की गरिमा के प्रत्यय से प्रमाणित होता है। मानव–गरिमा प्रत्येक पीढ़ी के लिए मान्य (वैध) होती है। मानव की गरिमा समय के साथ घटती या बढ़ती नहीं है। व्यक्ति में गरिमा के आधार पर कुछ निश्चित अधिकार होते हैं। ये अधिकर भी सदैव स्थिर रहते हैं। अन्तर केवल अधिकारों की अनुभूति का होता है। उदाहरण के रूप में किसी समय में औरतों को मतदान करने का अधिकार नहीं था। मानव प्रकृति परिवर्तित होती है।

मानव विभिन्न संस्कृतियों में अपने आपको विभिन्न प्रकार से व्यक्त करता है। शहरी मानव का अस्तित्व गुफावासी मानव के अस्तित्व से भिन्न है। लेकिन, वे दोनों मानव ही हैं। मानव स्वभाव एक विशिष्ट संस्कृति में स्वयं को अभिव्यक्त करता है। लेकिन कोई संस्कृति इसे समाप्त नहीं कर सकती है। मानव स्वभाव सभी ऐतिहासिक अभिव्यक्तियों से परे होता है।

4.9 सारांश

इस इकाई में हमने प्राकृतिक नैतिक नियम और सार्वभौमिकता की चर्चा की। प्राकृतिक नियम के प्रति हमारी समझ यह स्पष्ट करती है कि नैतिक मूल्यों और बुद्धि के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। अच्छाई स्वयं को बुद्धि के प्रति व्यक्त करती है अथवा, यह केवल बुद्धि के कारण होता है कि अच्छाई अनुभूत होती है। किसी भी नियम की व्यवहार्यता यही होती है कि वह बुद्धि संगत होता है तथा नैतिक अशुभ का सार यह है कि यह बुद्धि के आदेश कि विरूद्ध होता है।

प्राकृतिक नियम वह है जिसकी खोज व्यक्ति में बुद्धि के द्वारा हुई है। प्राकृतिक नियम व्यक्ति के व्यवहार में अन्तर्निहित होते हैं तथा जिनका सार कभी नहीं बदलता है। प्रत्येक अच्छे और सकारात्मक नियम का आधार प्राकृतिक नियम होता है। इसलिए प्रत्येक मानव अधिकार प्राकृतिक नियम पर आधारित होता है। कोई भी व्यक्ति आंतरिक अशुभ के विचार को प्राकृतिक नियम के बिना नहीं समझ सकता। शुभ की खोज अपने आप में अशुभ की खोज का मार्गदर्शन करती है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी: क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) क्या प्राकृतिक नियम बदलते रहते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) आंतरिक अशुभ क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.10 कुंजी शब्द

नियम : नियम नियमावली का वह तंत्र है जिसे साधारणतया निश्चित संस्थानों के द्वारा लागू किया जाता है।

प्रकृति : प्रकृति के लिये अंग्रेजी शब्द नेचर (Nature) की उत्पत्ति लैटिन शब्द नेचुरा (Natura) से हुई है, जिसका अर्थ जन्म है। नेचुरा शब्द ग्रीक शब्द फिसिस (Physis) का लैटिन अनुवाद है जिसका वास्तविक सम्बन्ध पौधों, जानवरों एवं संसार की अन्य आंतरिक विशेषताओं से होता है, जिसका विकास स्वयं के अनुरूप होता है।

4.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

क्युरन, चार्ल्स एण्ड मैककॉरमिक, रिचर्ड ए., (एडि.). *रीडिंग इन मोरल थियोलॉजी,* नं. 7. न्यू यॉर्क/माहवाहः पॉलिस्ट प्रेस, 1991.

फुच्स, जोसेफ. *नेचुरल लॉ.* ट्रान्स. हेलमेट रेक्टर और जॉन ए. डॉवलिंग. डबलिनः गिल एण्ड सन, 1965.

पोडिमट्टम, फैलिक्स. *रिलेटिविटि ऑफ नेचुरल लॉ इन दि रिन्युअल ऑफ मॉरल थियोलॉजी.* बॉम्बेः इग्जामिनर प्रेस, 1970.

सकोकेनहॉफ, इबरहार्ड. *नेचुरल लॉ एण्ड ह्यूमन डिग्निटीः यूनिवर्सल एथिक्स इन एन हिस्टोरिकल वर्ल्ड.* ट्रांस. बायन मैकनेल. वाशिंगटन डीसीः द कैथोलिक यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका प्रेस, 2003.

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) यह मानव की बौद्धिक प्रकृति के आधार पर बुद्धि द्वारा खोजा गया नैतिक नियम है।

2) प्राकृतिक नियम सर्वत्र वैध (मान्य) है क्योंकि यह मानव में स्थित सार्वभौमिक प्रकृति पर आधारित है।

बोध प्रश्न II

1) सर्वाधिक आधारभूत प्राकृतिक नियम कभी नहीं बदलता है। केवल प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसका अनुप्रयोग भिन्न होता है।

2) आंतरिक अशुभ क्रिया वह है जो दूसरे मानव के निरपेक्ष अधिकार पर हमला करती है। इस बात को समझे बिना कि उस कार्य के क्या सामाजिक लाभ होंगे। जिस प्रकार से बुद्धि सर्वाधिक आधारभूत प्राकृतिक नियम का ग्रहण करती है, उसी प्रकार से यह कुछ कार्यों को आंतरिक अशुभ की क्रिया के रूप में ग्रहण करती है।

इकाई 5 नैतिक सापेक्षतावाद*

रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 परिभाषा

5.3 नैतिक सापेक्षतावाद के विभिन्न प्रकार

5.4 दार्शनिक दृष्टि

5.5 सारांश

5.6 कुंजी शब्द

5.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

नैतिकता की अवधारणा को समझने के लिए कोई एकमात्र पद्धति नहीं है। बहुधा नैतिकता के सम्बन्ध में भांति–भांति की उलझनें होती हैं, क्योंकि अनेक दार्शनिक नैतिकता को भ्रमात्मक मानते हैं। अनेक नैतिक स्थापनाओं में से नैतिक सापेक्षतावाद को अत्यधिक लोकप्रिय माना जाता है। इस अवधारणा का मत है कि हम व्यवहार और हमारी संस्कृति के नियमों, वरीयताओं, उम्र, इत्यादि से बद्ध होते हैं। प्रस्तुत इकाई,

- नैतिक सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के दार्शनिक अर्थ को प्रस्तुत करेगी,
- भिन्न प्रकार के नैतिक सापेक्षतावादी मतों को प्रस्तुत करेगी।

5.1 परिचय

दार्शनिकों ने नैतिक या नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों को तीन सामान्य विषय–क्षेत्रों में विभाजित किया है– मानकीय नीतिशास्त्र, अधिनीतिशास्त्र, और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र। मानकीय नीतिशास्त्र परामर्शनीतिशास्त्र भी कहलाता है, क्योंकि यह नैतिक समस्याओं का अध्ययन करता है और किसी व्यक्ति को कैसे कार्य करना चाहिए की खोज में संलग्न रहता है। यह किसी व्यक्ति द्वारा किए गये कृत्य के तथ्यों अथवा क्या करना चाहिए के बारे में कोई व्यक्ति क्या सोचता है, की चर्चा नहीं करता है। अधिक विशिष्ट रूप से कहा जाये, इस विधा का सम्बन्ध उन निर्यणों से है जो उन नियमों को स्थापित करते हैं, जिनसे कोई कृत्य उचित और अनुचित बनता है। यह अत्यधिक व्यावहारिक भूमिका निभाता है, जिसमें उन नैतिक मापदण्डों तक पहुँचते हैं, जो उचित और अनुचित व्यवहारों (चलनों) को नियमित करते हैं। यह ग्रहण करने योग्य अच्छी आदतों, पालनीय कर्त्तव्यों की अभिव्यक्ति को सम्मिलित कर सकता है। उदाहरणार्थ, ईमानदारी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और बेईमानी को हतोत्साहित करना

* सुश्री लिजाश्री हजारिका, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू

चाहिए। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र गर्भपात, भ्रूणहत्या, पशु–अधिकार जैसे विशिष्ट विवादित मुद्दों के परीक्षण को सम्मिलित करता है। अधिनीतिशास्त्र विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र भी कहलाता है। यह विधा नैतिक पदों के अर्थों के स्पष्टीकरण का चिन्तन करती है। इसका मूल प्रश्न है, 'क्या है'; शुभ, उचित, अनैतिक इत्यादि। यह नैतिक सिद्धान्तों के स्रोत और उनके आशयों का अन्वेषण करते हैं; क्या वे मानवीय संरचना हैं अथवा वे मानवीय सम्वेदनाओं को सम्मिलित करते हैं?

अधि–नीतिशास्त्र के दो प्रमुख प्रश्न हैं– 1) नैतिकता का मानव से स्वतन्त्र अस्तित्व है या यह मानव पर निर्भर है, और 2) हमारे नैतिक निर्णयों और व्यवहारों का मूलभूत मानसिक आधार क्या है। अधिनीतिशास्त्र नैतिक दर्शन का अत्यधिक अमूर्त क्षेत्र है, क्योंकि यह नहीं जानना चाहता कि क्या किया गया, अथवा किस प्रकार के कृत्य अच्छे (शुभ) या बुरे (अशुभ) हैं; बल्कि यह जानना चाहता है कि शुभ और अशुभ का स्वरूप क्या है, क्या है जो नैतिक रूप से उचित या अनुचित है। इन प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर अधि–नैतिक स्थापनाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। अधि नीतिशास्त्र में सबसे बड़ा विवाद नैतिक–वस्तुवाद और नैतिक गैर–वस्तुवाद के मध्य विभाजन रहा है। नैतिक वस्तुवादियों का मानना है कि नैतिक तथ्य वस्तुगत तथ्य हैं, जो जगत में मानवीय अभिवृत्तियों से स्वतन्त्र पाये जाते हैं। वस्तुएं हमसे स्वतन्त्र रूप में अच्छी या बुरी हैं, और हम उनके साथ हैं और नैतिकता की खोज करते हैं। नैतिक वस्तुवाद के प्रतिपादक वस्तुवादी कहलाते हैं। इसमें अन्तर्निहित है कि वस्तुगत मूल्य या नैतिक तथ्य जगत के अंग या ताना–बाना हैं। नैतिक वस्तुवादी संज्ञानवादी भी हैं, क्योंकि उनका मानना है कि नैतिक गुण सत् हैं और ये गुण कुछ भावों/आशयों/संदर्भों में व्यक्तियों की सोच, विश्वास, और निर्णयों से स्वतन्त्र हैं। नैतिक गैर–वस्तुवादी का मत है कि नैतिक तथ्य जगत में नहीं हैं, जब तक कि हम उन्हें वहाँ न रखें, कि नैतिक–तथ्य हमारे द्वारा निर्धारित होते हैं। इस विचार में, नैतिकता खोजी नहीं जाती, अपितु आविष्कृत की जाती है। गैर–वस्तुवादियों के लिए, कोई नैतिक निर्णयों के समक्ष कोई नैतिक सत्य नहीं है, और नैतिकता के समक्ष कुछ भी शेष नहीं रहता। नैतिक अ–वस्तुवादी सम्मिलित करता है कि या तो नैतिक गुणों के अस्तित्व का पूर्णतया नकार है या फिर यह स्वीकरण कि नैतिक गुणों का अस्तित्व है, परन्तु यह अस्तित्व मन पर निर्भर है। नैतिक कथनों पर निर्भर इसके अनेक रूप हैं कि नैतिक कथन आत्मनिष्ठ दावे हैं (नैतिक आत्मनिष्ठतावाद), बिल्कुल भी सही दावे नहीं हैं (अ–संज्ञानवादी) या भ्रमपूर्ण वस्तुगत दावे हैं (नैतिक शून्यवाद)। नैतिक आत्मनिष्ठतावाद को नैतिक सापेक्षतावाद से भ्रमित नहीं करना चाहिए। नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक आत्मनिष्ठतावाद से अधिक व्यापक है। नैतिक आत्मनिष्ठतावाद का मानना है कि नैतिक कथन दृष्टा (व्यक्ति) की अभिरुचि अथवा रूढियों से सत्य या असत्य बनते हैं अथवा कोई नैतिक वाक्य किसी के द्वारा धारण किये गये अभिवृत्ति को अन्तर्निहित करती है। नैतिक सापेक्षतावाद वह दृष्टि है जिसके लिए वस्तु का नैतिक रूप से उचित होना समाज द्वारा अनुमोदित होना चाहिए, जिसका निष्कर्ष यह निकलता है कि विभिन्न समाजों और इतिहास के विभिन्न कालों में भिन्न–भिन्न वस्तुएं या कृत्य उचित होते हैं।

5.2 परिभाषा

नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक निरपेक्षवाद अथवा नैतिक वस्तुवाद की तुलना के सन्दर्भ में अधिक आसानी से समझा जा सकता है। निरपेक्षवाद का दावा है कि नैतिकता

सार्वभौमिक सिद्धान्तों (नैतिक नियमों, विवेक) पर आश्रित होती है। नैतिक निरपेक्षवाद वह नैतिक विश्वास है कि नैतिक प्रश्नों के निर्णय हेतु निरपेक्ष पैमाने उपस्थित हैं, और कि कृत्य के सन्दर्भ से रहित कुछ विशेष कृत्यों को उचित या अनुचित कहा जा सकता है। इस प्रकार, कृत्य, कृत्य में संलग्न व्यक्ति, समाज, या संस्कृति के विश्वासों और लक्ष्यों के सन्दर्भ से रहित, आन्तरिक रूप से नैतिक या अनैतिक होते हैं। उदारणार्थ, ईसाई निरपेक्षवादी का विश्वास है कि ईश्वर हमारी सामुदायिक नैतिकता का निरपेक्ष/अन्तिम स्रोत है, और इसलिए नैतिकता ईश्वर की तरह अपरिवर्तनीय है। ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है, यह मानवीय सहमति या असहमति से अनिर्भर रूप में/स्वतन्त्र रूप में सत्य या उचित है। वहीं नैतिक सापेक्षतावाद का मानना है कि नैतिकता किसी निरपेक्ष मापदण्ड पर आधारित नहीं होती है। बल्कि नैतिक सत्य चरों जैसे कि परिस्थिति, संस्कृति, व्यक्ति की भावनाओं इत्यादि पर निर्भर करता है। यह कि, किसी कृत्य का उचित या अनुचित होना उस समाज के मानकों पर निर्भर करता है, जिसमें यह कृत्य किया जाता है। समान कृत्य किसी एक समाज में नैतिक रूप से उचित हो सकता है, वहीं दूसरे समाज में अनुचित। उदाहरणार्थ, विवाहेत्तर सम्बन्ध किसी समाज में निंदनीय है, वहीं किसी अन्य समाज में स्वीकृत। नैतिक सापेक्षतावादियों के मत में, कोई भी सार्वभौमिक नैतिक मापदण्ड नहीं होते, जो प्रत्येक काल में प्रत्येक व्यक्ति पर प्रयुक्त किये जा सकें। किसी समाज के चलनों का मूल्यांकन करने वाले उसी समाज के नैतिक मापदण्ड होते हैं। भिन्न–भिन्न समुदायों के सदस्यों के मध्य नैतिक विवादों को सुलझाने या नैतिक विषयों/मामलों में सहमति पर पहुँचने के लिए कोई समान/साझा दृष्टिकोण/सन्दर्भ–बिन्दु नहीं होता है। नैतिक सापेक्षतावादियों का मानना है कि किसी भी नैतिक प्रश्न का कोई एक सही उत्तर नहीं है। नैतिक सापेक्षतावादी वह दृष्टि है जो उस धारणा को नकारती है कि कोई एक, सार्वभौमिक वैध नैतिकता है, जिसे वैध नैतिक तर्क–प्रणाली/तर्क–प्रक्रिया द्वारा खोजा जा सकता है।

नैतिक सापेक्षतावादी इन बातों का समर्थन करते हैं कि– 1) किसी विशिष्ट दृष्टिकोण/स्थापना–बिन्दु के सापेक्ष नैतिक निर्णय सत्य या असत्य और नैतिक कृत्य उचित या अनुचित होते हैं। 2) कोई भी दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठरूप से वरीय सिद्ध नहीं हो सकता। किसी समान/साझा दावे के पदों में नैतिकता को परिभाषित करने के सभी प्रयास असफल हैं, क्योंकि वे प्रतिरक्ष्य स्थापना से सम्बन्धित आधारवाक्यों पर आश्रित होते हैं और इस दृष्टिकोण को न मानने वाले व्यक्ति द्वारा इसे स्वीकरना आवश्यक नहीं है। किसी नैतिक दृष्टिकोण के निष्कर्षतः किसी अन्य से उच्च सिद्ध न होने का यह तात्पर्य नहीं है कि यह निर्णायकीय रूप से उच्च नहीं ठहराया जा सकता है। नैतिक सापेक्षतावाद नकारता है कि नैतिक मूल्य प्राकृतिक या अप्राकृतिक/गैर–प्राकृतिक हैं– कि वे मानवीय विश्वास अथवा संस्कृति से स्वतन्त्र रूप में वास्तविक या वस्तुगत हैं। यह स्थापना नैतिकता के स्वरूप को मूलतः मानव–केन्द्रित मानती है। इस विचार के अनुसार, नैतिक मूल्य जगत में नहीं हैं अपितु मानवीय दृष्टिकोण और आवश्यकताओं से रचित होते हैं। ये आवश्यकताएं और दृष्टिकोण व्यक्ति–व्यक्ति या संस्कृति–संस्कृति में अलग–अलग हो सकती हैं। व्यवहारों के परीक्षण और नैतिक मूल्यांकन के बिना मानवीय जीवन की कल्पना करना कठिन है। नैतिक सापेक्षतावादी का दावा क्या है? दृष्टान्त के लिए एक उदाहरण लेते हैं, रूना ने अपनी किशोरवय पुत्री उदेश्ना को सम्बोधित एक पत्र पढ़ा जो उदेश्ना के अमेरिकन मित्र स्मिथ ने लिखा था। रूना का विचार है कि अपनी पुत्री के प्रेम जीवन के बारे में जानने का उसे अधिकार है, जबकि स्मिथ का विचार है कि यह उदेश्ना की निजता

के अधिकार का उल्लंघन है। रूना का दृष्टिकोण उसकी संस्कृति और मूल्यों से समर्थित है, जबकि स्मिथ का दृष्टिकोण उसके स्वयं की संस्कृति और मूल्यों से समर्थित है। नैतिक सापेक्षतावादी कह सकता है कि/कहेगा कि रूना को पत्र नहीं पढ़ना चाहिए, यह निर्णय स्मिथ की मूल्य–प्रणाली के सन्दर्भ में उचित है, और उसी क्षण वह समान निर्णय रूना की मूल्य–प्रणाली के सन्दर्भ में उचित नहीं है। हम सदैव किसी कृत्य या मानवीय–व्यवहार को उचित या अनुचित (सही या गलत) रूप में मूल्यांकित करते हैं।

तो भी, महत्ता प्रतीत होने के बावजूद, कुछ व्यक्ति नैतिकता के बारे में संशय रखते हैं कि– वास्तव में कोई सार्वभौमिक नैतिक प्रणाली सम्भव है और कि नैतिक दावे सत्य होते हैं या वे केवल धारणाओं के मामले हैं। कुछ लोग तर्क देते हैं कि नैतिक शुभ स्वाद या रूढ़ि का मामला है। यह दृष्टिकोण का सन्दर्भ इतिहासकार हेराडोटस में ढूंढा जा सकता है जिसने उल्लिखित किया कि नरभक्षण कुछ देशों में मान्य है और दूसरे कुछ देशों में अनैतिक। समान रूप से, पशुबलि खाना कुछ समाजों में स्वीकृत है, वहीं कुछ में अनैतिक। नैतिक सापेक्षतावादी नैतिक दावों के सत्य या असत्य होने को अस्वीकार नहीं करते हैं– बल्कि उनका मानना केवल यह है कि नैतिक–मूल्य (सत्य या असत्य होना) सापेक्ष होता है। सापेक्षतावाद का मानना है कि कोई सार्वभौमिक नैतिक सत्य नहीं होता, जहाँ सार्वभौमिकता से आशय सभी संस्कृतियों में समान रूप से सत्य या असत्य होना है। नैतिक सापेक्षतावादी का न केवल यह दावा है कि नैतिक निर्णयों का औचित्य विचारक, या विचारक के लिए मूल्यवान मूल्य–प्रणाली पर निर्भर करती है, अपितु यह भी दावा है कि कोई भी वरीय उचित मूल्य–प्रणाली नहीं है। इस प्रकार सापेक्षतावादी के मूल दावे हैं– 1) कुछ नैतिक निर्णय अन्य विचारक के सापेक्ष उचित (सत्य) होते हैं। 2) कोई अद्वितीय प्राधिकारी नहीं है जिसके द्वारा नैतिक निर्णयों का औचित्य (सत्यता) ज्ञात हो सके। तथ्य जिन पर नैतिक निर्णयों के औचित्य का दावा निर्भर होता है, अलग–अलग हो सकते हैं। कुछ सापेक्षतावादियों का मानना है कि यह (नैतिक निर्णयों का औचित्य) निर्णायक की कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक विशेषताओं पर निर्भर करता है। कुछ का मानना है कि यह निर्णायक के बारे/से सम्बन्धित सामाजिक तथ्यों पर निर्भर करता है।

कुछ नीति–दार्शनिक नैतिक सापेक्षतावाद के सिद्धान्त को नकारते हैं। उनमें से कुछ का दावा है कि समाजों/समुदायों के नैतिक चलन/व्यवहारों/रिवाजों में अन्तर हो सकता है, परन्तु इन चलनों में अन्तर्निहित नैतिक सिद्धान्तों में अन्तर नहीं होता है। उदाहरणार्थ, कुछ समाजों में, निश्चित उम्र वाले अपने माता–पिता की हत्या सामान्य प्रथा है, जिसका मूल यह विश्वास है कि जीवन के पश्चात् वाले जीवन में यदि कोई शारीरिक रूप से सक्रिय होने पर प्रवेश करता है तो यह लाभदायी है। जबकि कुछ समाजों में यह निंदनीय है, जबकि वे समाज माता–पिता की सेवा के कर्तव्य के सम्बन्ध में पूर्व–वर्णित समाजों से सहमत हैं। समाज मूलभूत नैतिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग में अलग–अलग हो सकते हैं, लेकिन उन सिद्धान्तों पर सहमत होते हैं। यह भी तर्क किया जाता है कि कुछ नैतिक विश्वास सांस्कृतिक रूप से सापेक्ष होते हैं जबकि अन्य नहीं। कुछ निश्चित चलन, जैसेकि पहनावा और शिष्टता के सम्बन्ध में रीति–रिवाज, स्थानीय प्रथाओं पर निर्भर हो सकते हैं, जबकि अन्य चलन, जैसेकि गुलामी, या यातना देना या राजनैतिक दमन सार्वभौमिक नैतिक मापदण्डों पर निर्भर होते हैं और अनेक मतभेदों के बावजूद अनुचित ठहराये जाते हैं।

सापेक्षतावादियों के लिए नैतिक दावे का सत्य उस संस्कृति के सामान्य विश्वासों पर पूर्णतया निर्भर होता है, जिसमें निर्णय लिया जाता है। पाठक नैतिक सापेक्षतावाद को नैतिक आत्मनिष्ठवाद से भ्रमित कर सकता है। इन दोनों पदों के मध्य सूक्ष्म भेद है। नैतिक आत्मनिष्ठवाद नैतिक सापेक्षतावाद नहीं है, क्योंकि नैतिक आत्मनिष्ठतावाद का विश्वास है कि व्यक्ति–विशेष स्वयं की नैतिकता की रचना करते हैं; नैतिकता का अस्तित्व व्यक्ति–विशेषों के अनुभवों से निर्देशित होते हैं, क्योंकि कोई वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं हो सकता है। कृत्यों के बारे में लोगों के विश्वास उचित या अनुचित, अच्छे या बुरे, लोगों के कृत्यों के प्रति भावना पर निर्भर करते हैं, न कि तर्कणा या नैतिक विश्लेषण पर। नैतिक अभिव्यक्तियों की सत्यता और असत्यता लोगों की अभिवृत्तियों पर निर्भर करती है। नैतिक सापेक्षतावादी युक्ति दे सकता है कि यह कथन "रोहित दुष्ट है" रोहित के द्वारा किये गये कई कार्यों के प्रति नापसंदगी को अभिव्यक्त करता है, परन्तु इससे यह अनुसरित नहीं होता है कि यह सत्य या असत्य है कि रोहित सचमुच में दुष्ट है। दोनों पद नैतिक दावों की सत्यता व्यक्ति–विशेषों की अभिवृत्तियों के सापेक्ष मानने के कारण एक–दूसरे से सुसंगत हैं।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक सापेक्षतावाद क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक निरपेक्षवाद से किस तरह भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) क्या नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक आत्मनिष्ठवाद या व्यक्तिनिष्ठवाद के समान है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.3 नैतिक सापेक्षतावाद के विभिन्न प्रकार

सार्वभौमिकतावाद को नकारना एक लोकप्रिय विचार है, जिसका कारण यह तथ्य है कि कुछ लोग सोचते हैं कि दूसरों के प्रति सहिष्णु होने के लिए हमें नैतिक सत्य के सन्दर्भ में सार्वभौमिकतावाद को खारिज करना होगा और इसके बजाय सापेक्षतावाद को बढ़ावा देना होगा। भिन्न–भिन्न लोगों की समझ भिन्न–भिन्न होती है और कोई भी आधारभूत नैतिक मांग नहीं है जो सभी पर लागू हो सके। मानव सभ्यता का इतिहास की हमारी यात्रा हमें बताती है कि अनेक प्रश्नों पर एकराय का अभाव रहा है। विभिन्न समाज और संस्कृतियां और समान समाज या संस्कृति में विभिन्न लोग भिन्न–भिन्न नैतिक विश्वास और प्रथा या चलन रखते हैं। कुछ समाजों की नैतिकता की मांग है कि गर्भपात अस्वीकार्य है। वहीं अन्य समाजों की नैतिक संहिता में गर्भपात स्वीकार्य है। नैतिक विश्वासों और चलनों में गहरे मतभेदों के प्रकाश में अनेक लोगों के लिए यह मानना स्पष्ट है कि सभी स्थानों और मुद्दों/विषयों के लिए वैध कोई सार्वभौमिक, सामान्यरूप से अनुप्रयुक्त नैतिक सिद्धान्त, नियम, और मूल्य नहीं हैं। नैतिकता का कोई वस्तुनिष्ठ, बौद्धिक आधार नहीं है, कोई वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य नहीं है जिसके आधार पर सभी तार्किक लोगों से सहमति की आशा की जाये, समस्त महत्व वाले तथ्यों और सूचनाओं से पूर्णतः परिचित होने पर भी नैतिकता के विषय में अनेक लोग कहते हैं कि "सबकुछ सापेक्ष है"।

नैतिक सापेक्षतावाद को अनेक तरीकों से समझा जा सकता है–

1) वर्णनात्मक सापेक्षतावाद– वर्णनात्मक सापेक्षतावाद को सांस्कृतिक सापेक्षतावाद भी कहा जाता है। इसके अनुसार, नैतिक मुद्दों/विषयों के बारे में विश्वास या मापदण्ड भिन्न–भिन्न व्यक्ति–विशेषों और भिन्न–भिन्न समाजों के सापेक्ष हैंय अलग अलग व्यक्ति–विशेष और अलग–अलग समाज भिन्न–भिन्न नैतिक विश्वासों को स्वीकारते हैं और इस प्रकार नैतिक प्रश्नों के उत्तरों में असहमत होते हैं। उदाहरणार्थ, कुछ समाज गर्भपात की निंदा करते हैं; कुछ अन्य स्वीकारते हैं। कुछ संस्कृतियों में, मासिक धर्म के दौरान महिलाओं का रसोईघर में प्रवेश वर्जित है। यह सिद्धान्त ऐसे किसी भी दावे को नकारता है कि कोई नैतिक सार्वभौमिक दावा है जो प्रत्येक संस्कृति धारण करती है/स्वीकारती है। रिचर्ड ब्रान्ड ने वर्णनात्मक सापेक्षतावाद पद का प्रयोग उस दृष्टि को संदर्भित करने के लिए किया जिसका मानना है कि विभिन्न व्यक्तियों या समाजों में नैतिक विश्वासों या नैतिक मापदण्डों के बारे में मूलभूत असहमतियां हैं। यह वस्तुओं कैसी हैं के बारे में दावा है, न कि किसी प्रकार के मानकीय या मूल्यांकनपरक निर्णयों के बारे में–बहुपत्नीप्रथा किसी संस्कृति में नैतिक रूप से स्वीकार्य है और किसी अन्य में अस्वीकार्य।

2) नैतिक या मानकीय सापेक्षतावाद– इसका मानना है कि भिन्न–भिन्न प्रयोजन, आकांक्षाओं या विश्वासों को धारण करने वाले भिन्न–भिन्न नैतिक अभिकर्त्ताओं, या अभिकर्त्ताओं के समूहों पर भिन्न–भिन्न आधारभूत नैतिक अपेक्षाएं प्रयुक्त होती हैं। मानकीय सापेक्षतावाद का मत है कि नैतिक अपेक्षायें व्यक्तियों पर उनके प्रयोजन, आकांक्षाओं, या विश्वासों पर निर्भर या उनके सापेक्ष बाध्यकारी होती हैं। मानकीय नैतिक सापेक्षतावाद यह विचार है कि सभी समाजों को अन्यों के भिन्न नैतिक मूल्यों को स्वीकारना चाहिए, क्योंकि सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त नहीं हैं। उदाहरणार्थ, रिश्वत का किसी समाज में चलन का तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य

समाजों/संस्कृतियां औचित्यपूर्ण तरीके से उसकी निंदा नहीं कर सकती हैं। कोई सही या गलत नहीं है, अतः हमें अन्यों के व्यवहारों को सहन करना चाहिए। मानकीय सापेक्षतावाद का मानना है कि किसी संस्कृति के अपने नैतिक ढांचे की कार्यशील नैतिक विश्वासों और चलनों को मूल्यांकित करना या हस्तक्षेप करना गलत है; किसी समाज में जो होता है उसका मूल्यांकन केवल उसी समाज की परिपाटियों के द्वारा ही किया जा सकता है। दो सामान्य रूप निम्नवत् हैं–

अ) व्यक्तिपरक नैतिक आपेक्षिक सापेक्षतावाद का कथन है कि कोई कृत्य किसी व्यक्ति पर नैतिक रूप से बाध्यकारी है यदि और केवल यदि वह कृत्य उस व्यक्ति–विशेष द्वारा स्वीकृत आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों द्वारा अनुमन्य हो।

आ) सामाजिक नैतिक आपेक्षिक सापेक्षतावाद का कथन है कि कोई कृत्य नैतिक रूप से बाध्यकारी है यदि और केवल यदि उस व्यक्ति के समाज द्वारा स्वीकृत आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों द्वारा वह कृत्य अनुमन्य हो। यह नैतिक सापेक्षतावाद का लोकप्रिय प्रकार है।

3) अधि–नीतिशास्त्रीय सापेक्षतावाद– इसका कथन है कि नैतिक निर्णय वस्तुनिष्ठ रूप से सत्य या असत्य नहीं होते हैं और इस प्रकार भिन्न–भिन्न व्यक्ति–विशेष या समाज विरोधी नैतिक निर्णयों को धारण कर सकते हैं/स्वीकार कर सकते हैं। यद्यपि, ऐसा सोचने और इस तरह कार्य करने की प्रवृत्ति होती है कि जैसेकि हमारी स्वयं की या हमारे समाज या संस्कृति की नैतिक दृष्टि सही (उचित) हो। इसका विश्वास है कि नैतिक निर्णय किसी निरपेक्ष भाव/अर्थों में सत्य या असत्य नहीं होते हैं, अपितु किसी विशेष दृष्टिकोण के सापेक्ष होते हैं। यह कहना कि नैतिक दावे का सत्य किसी दृष्टिकोण के सापेक्ष सत्य है, को जिसमें यह दिया गया/रचित/बनाया गया उस स्थिति के सापेक्ष होने से भ्रमित नहीं करना चाहिए। इसके अनुसार, एक संस्कृति के मूल्यों को अन्य पर तरजीह देने का कोई भी वस्तुनिष्ठ आधार नहीं है। अपने अद्वितीय विश्वासों, प्रथाओं, और चलनों के आधार पर समाज अपने नैतिक चुनावों को बनाते हैं। लोग इस विश्वास के प्रति झुकाव रखते हैं कि 'उचित' नैतिक मूल्य वे हैं जो उनकी संस्कृति में पाये जाते हैं। इस विचार का विश्वास है कि लोग न केवल नैतिक मुद्दों पर असहमत होते हैं, अपितु शुभ, अशुभ, उचित और अनुचित पद सार्वभौमिक सत्य–शर्तों पर बिल्कुल भी खड़े नहीं होते हैं। अधि नैतिक सापेक्षतावाद का मत है कि नैतिक मूल्य भिन्न, और कभी–कभी अतुलनीय/तारतम्यहीन मानवीय उद्देश्यों जैसेकि सामाजिक समन्वय इत्यादि के लिए संरचित होते हैं। यह दृष्टिकोण नैतिक संरचनावाद कहलाता है और स्पष्टरूप से गिलबर्ट हार्मन ने दिया है। नैतिक सापेक्षतावाद का अन्य दृष्टिकोण कहता है कि नैतिक मूल्य मानवीय बौद्धिकता या प्रतिस्पर्धात्मक रुचियों के मध्य सामाजिक अनुबन्धों के द्वारा आदर्शित दैवीय आदेशों/प्रेरणाओं द्वारा संरचित है। यह दैवीय–आदेश/प्रेरणा सिद्धान्त कहलाता है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी: क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक सापेक्षतावाद के विभिन्न प्रकार कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) अधि–नीतिशास्त्रीय सापेक्षतावाद का स्वरूप क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 दार्शनिक दृष्टि

दार्शनिक वार्ताओं में, 'नैतिक सापेक्षतावाद' पद प्रारम्भिक तौर पर उस अधि नैतिक पक्ष/विचार को बताने के लिए प्रयोग होता है जिसके अनुसार नैतिक निर्णयों का औचित्य कुछ इच्छित घटकों के सापेक्ष होता है; जैसेकि किसी व्यक्ति–विशेष या समुदाय के नैतिक मानकों के सापेक्ष। कठोरतापूर्वक कहा जाये तो, इस सिद्धान्त को समझने के एकाधिक तरीके हैं। यह अनेकानेक वर्षों से विविध संस्कृतियों में लोगों द्वारा धारण किये गये दृष्टिकोणों और युक्तियों को समेटता है। जैन दर्शन ने अनेकान्तवाद का सिद्धान्त दिया, जिसका तात्पर्य है सत्/वास्तविकता स्वरूपतः निरपेक्ष नहीं है और इसके कई आयाम/पक्ष हैं। जैन तीर्थंकर महावीर के सिद्धान्तानुसार, सत्य और सत् अनेक दृष्टियों से भिन्न–भिन्न देखे जाते हैं। कोई एकमात्र दृष्टिकोण नहीं है, जो पूर्ण सत्य या सत् को चित्रित करे। 19वीं सदी के मानव–केन्द्रित खोजों की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले ग्रीक सोफिस्ट प्रोटागोरस (481–420 ईसापूर्व) ने कुछ ऐसा ही अभिव्यक्त किया था। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है कि व्यक्ति सभी वस्तुओं का मापदण्ड है। यह इस प्रेक्षण पर आधारित है कि प्रेक्षक के समाज से भिन्न–भिन्न नैतिक नियम होने के बावजूद अन्य समाज पूर्णतः सही ढंग से जीवित रहे। ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस (484–420 ईसापूर्व) ने देखा कि प्रत्येक की अपनी विश्वास–प्रणाली होती है और अन्यों से भिन्न ढंग से कृत्य करने का तरीका होता है। कई दार्शनिकों ने नैतिकता के वस्तुनिष्ठ मापदण्ड के विचार को प्रश्नगत किया है। यह इस विचार के प्रति संशय की ओर प्रेरित करता है कि मूल्यों का केवल कोई एक ही समुच्चय उचित/सही है। इसका पथप्रदर्शक विचार यह है कि एक सत्य नैतिकता की अपेक्षा अनेक सत्य नैतिकताएं हैं। कोई भी एक नैतिकता की प्रणाली, ईसाईयत या इस्लाम या हिन्दु नहीं है, जो हर समय में सभी हर स्थान में बाध्यकारी (सत्य) हो। विभिन्न संस्कृतियां, विभिन्न देश–काल में, विभिन्न जीवन–पद्धतियां और नैतिक चलन रखते हैं। यह सम्भव है कि ये सभी चलन सही/उचित हों। परन्तु कोई भी नैतिक प्रणाली निरपेक्षरूप से सत्य नहीं है, अपितु किसी विशिष्ट संस्कृति, या विशिष्ट व्यक्ति के लिए सत्य होती है। अब पूछा जाना चाहिए, क्या नैतिक सापेक्षतावाद सही है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए, यह स्पष्ट होना अच्छा है कि किस प्रकार के सत्य सापेक्ष हैं और किस तरह के नहीं नैतिक सापेक्षतावाद की ओर झुकाव वाले कई लोगों के अन्ततः यह कहते हैं कि न केवल नैतिक सत्य, अपितु सभी प्रकार

के सत्य सापेक्ष हैं। उनके अनुसार, सत्य सम्बन्धी कोई भी विचार/दृष्टि वस्तुनिष्ठ नहीं हैः सभी निर्णय किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से रचित होते हैं। यह अपरिहार्य है कि यह विकसित होती अनिश्चितता अन्य जीवन–पद्धतियों के प्रति सहिष्णुता और स्वीकरण की ओर बढ़े। सापेक्षतावाद का सत्य है कि हमें अन्यों पर नैतिक रूप से निर्णय नहीं देना चाहिए। विचार यह है कि नैतिक विश्वास और चलन रूढ़ियों और समझौतों से बद्ध होते हैं, और समाजों के मध्य अत्यधिक बदलते हैं। यद्यपि नैतिक सापेक्षतावाद का प्रथम आभास/परिचय प्राचीन समय में हो गया था, परन्तु तब यह बमुश्किल ही फैला। अनेक विद्वान मोंटेन्यू की रचनाओं में इसका पुनः आभास देखते हैं। अनेक सदियों के बाद, आधुनिक दर्शन की प्रवृत्तियों ने नैतिक सापेक्षतावाद का रास्ता बनाने में सहायता दी। 17वीं सदी में, हॉब्स ने नैतिकता के सामाजिक अनुबन्ध दृष्टिकोण के पक्ष में युक्ति दीं, जिसके अनुसार नैतिक नियम वे विधियां हैं जिन पर सामाजिक जीवन को सम्भव बनाने के लिए मनुष्य सहमत हैं। हॉब्स का मत है कि नैतिक सिद्धान्त इस आधार पर कि क्या वे किसी अगोचर प्रत्यय से संवादिता रखते हैं, उचित या अनुचित नहीं होते हैं, बल्कि उनका मूल्यांकन प्रयोजन के आधार पर होना चाहिए कि वे अपने उद्देश्य को किस बेहतर ढंग से निबाहते हैं। प्रारम्भिक आधुनिक काल में, बरूच स्पिनोजा (1632–1673) का उल्लेखनीय विचार है कि कुछ भी आन्तरिकतः अच्छा या बुरा नहीं होता है। उनका मानना था कि शुभ या पूर्णता जैसे गुणों का विशेषण दोषपूर्ण हैं, क्योंकि यह इस विचार पर आधारित है कि ईश्वर ने मनुष्यता को ध्यान में रखते हुए प्रकृति की संरचना की। उनका मत है कि इन्द्रियगोचर गुणों के सम्प्रत्यय के साथ नैतिक और सौन्दर्यशास्त्रीय सम्प्रत्ययों को सम्मिलित करने वाले सम्प्रत्ययों का परिवार बुद्धि या तर्क–शक्ति के बजाय कल्पना से उत्पन्न है। डेविड ह्यूम (1711–1776) कई महत्वपूर्ण सन्दर्भों में सम्वेगवाद और नैतिक सापेक्षतावाद के जन्मदाता कहे जाते हैं। उनका मानना है कि वे परामर्श जो बताते हैं कि कैसे कार्य करना चाहिए उन तथ्यात्मक दावों से जो बताते हैं कि प्राणी किस तरह के हैं, तार्किकरूप से निःसृत नहीं किये जा सकते हैं। वे किसी भी नैतिक दृष्टिकोण के उचित सिद्ध करने की सम्भावना पर संदेह करते हैं। उनके लिए, नैतिकता अन्तिम रूप से बुद्धि के बजाय भावनाओं पर निर्भर करती है। हालांकि, वे सापेक्षतावाद का समर्थन नहीं करते हैं, बल्कि तथ्य–विषय और मूल्य–विषय में अन्तर करते हैं। उनका सुझाव है कि नैतिक निर्णय, जो मूल्य–विषयों से संघटित हैं, वे जगत से प्राप्त सत्यापनीय तथ्यों से सरोकार नहीं है; बल्कि हमारी सम्वेदनाओं और आवेगों से। उनका मानना है कि नैतिकता केवल वस्तुनिष्ठ पैमाना रखती है, और हमारी वरीयताओं और परेशानियों के प्रति ब्रह्माण्ड तटस्थ रहता है। नीत्शे (1844–1900) ने नैतिक मूल्यों और हमारे ऊपर उनके प्रभाव के विश्लेषण की आवश्यकता पर बल दिया। समझौतावादी नैतिकता में नीत्शे ने यह समस्या पाई कि यह हमारी आत्म–रचित सामर्थ्य, जिसे नीत्शे "शक्ति का संकल्प" कहते हैं, को अवकाश नहीं दिया गया है। अतः, समझौतावादी नैतिकता मानवीय स्वतन्त्रता या रचना करने की मानवीय क्षमता/सम्भावना के प्रति खतरा है। उनकी प्रसिद्ध घोषणा कि "ईश्वर मर गया" यह अन्तर्निहित करती है कि नैतिक दावों के प्रमाणीकरण के अगोचर या वस्तुनिष्ठ तरीके अब विश्वसनीय नहीं हैं। नीत्शे के अनुसार, कोई व्यक्ति उस समय तक स्वयं के प्रति अजनबी रहता है जब तक वह आरोपित नियमों और विनियमों का अनुसरण करता है। इन नियमों और विनियमों का आरोपण पहले प्रकृति से परे किसी सत्ता (ईश्वर) के नाम पर धर्मों के द्वारा किया गया। बुद्धि के प्रयोग के बजाय, धर्म का पालन श्रद्धा के द्वारा होता है। धर्म नियम और विनियम आरोपित कर और हमें उनके अनुसरण के

लिए तैयार कर हमारी वास्तविक अस्मिता को छिपा देते हैं। हम केवल जो "अच्छा", और "बुरा" कहा जाता है, उसे स्वीकारते हैं और उसका अनुसरण करते हैं। अनुसरण करने की प्रक्रिया में आत्म–प्रेरणा और आत्म–रचित सामर्थ्य का अभाव हमारे जीवन में हो जाता है। नीत्शे के अनुसार, "जब यह हम तक आता है, हम 'ज्ञाता' नहीं हैं।" उनका विश्वास था कि नैतिकता की संरचना सक्रियरूप से, हम जो हैं और एक व्यक्ति के रूप में हम जो अच्छे और बुरे हैं इत्यादि के सापेक्ष होनी चाहिए, बजाय शक्तिमान व्यक्ति–समूह के द्वारा बनाये गये नैतिक विधियों के पालन से। नृविज्ञानी एडवर्ड वेस्टरमार्क (1862–1939) को नैतिक सापेक्षतावाद के विस्तृत सिद्धान्त की रूपरेखा बनाने वाले प्रथम लोगों में स्थान प्राप्त है। उन्होंने सभी नैतिक प्रत्ययों को किसी व्यक्ति की परवरिश की प्रेरणा वाले व्यक्तिगत निर्णयों के रूप में चित्रित किया।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक सापेक्षतावाद के पक्ष में नीत्शे ने कौन सी युक्तियां प्रस्तुत कीं?

.....

.....

.....

.....

.....

नैतिक सापेक्षतावाद अग्रलिखित कारणों की वजह से लोकप्रिय विचार होता गया–

1) धर्म का ह्रासकाल– धर्म उस सम्भावना को प्रस्तुत करता प्रतीत होता है कि नैतिकता हम पर निर्भर नहीं है। धर्म से विचलन के रूप में वस्तुनिष्ठ नैतिकता की सम्भावना के बारे में थोड़ा संशय होने लगा। नैतिक सापेक्षतावादी कहते हैं कि व्यक्ति–विशेष या हमारे समाज को देखने से अधिक अच्छा कोई स्थान नहीं है।

2) सांस्कृतिक विविधता का प्रेक्षण– हममें से अधिकांशतः जागरुक हैं कि संसार में अनेक भिन्न संस्कृतियां हैं और उन संस्कृतियों में से कई हमारे रिवाजों से बहुत भिन्न रिवाजों में संलग्न हैं। इन विविधताओं/बहुलताओं से पता चलता है कि कोई भी एकमात्र वस्तुनिष्ठ नैतिकता नहीं है, क्योंकि नैतिकता संस्कृतियों के साथ बदलती है। महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्नों के बारे में विस्तृत विभिन्न मतों का होना नैतिक सापेक्षतावाद के पक्ष में वह तथ्य है, जो सामान्य रूप से उल्लिखित किया जाता है। कुछ समाज गुलामी को वस्तुओं की प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत् मानते हैं, तो वहीं कुछ नैतिक तिरस्कार के रूप में निंदनीय। अनेक व्यक्ति–विशेष गर्भपात को हत्या की तरह देखते हैं, जबकि अन्य अपनी पुनरुत्पाद्य प्रक्रिया पर आत्म–नियंत्रण के स्त्री–अधिकार पर अस्वीकार्य अतिक्रमण के रूप में गर्भपात रोकने के प्रयासों की निंदा करते हैं। इस प्रकार के अनेक मत–भेदों के प्रकाश में एक वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य पर विश्वास करना तार्किक नहीं है। यदि इस प्रकार के वस्तुनिष्ठ पैमाने न हो, तो नैतिक मुद्दों पर सहमति का अच्छा समझौता होगा जैसाकि कोई वास्तव में खोज पाता है, की अपेक्षा।

नैतिक सापेक्षतावाद सिद्धान्त की कुछ गम्भीर हानियां हैं और हम नैतिक सापेक्षतावाद के विरोध में कुछ युक्तियां प्रस्तुत कर सकते हैं। एक सबल युक्ति वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य के अस्तित्व से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, दुष्टता अनुचित है, सताना आनन्दप्रद है अनुचित है, करुणा सद्गुण है अनुचित होगा यदि यह नैतिक सापेक्षतावाद के द्वारा विचारणीय है। एक अन्य दोष यह है कि नैतिक मुद्दों की असहमति में, इसका मानना है कि कोई वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य नहीं है। सापेक्षतावाद वास्तव में व्यक्तियों को कैसे व्यवहार करना चाहिए, के बारे में थोड़ा–सा या बिल्कुल भी नहीं बताता है। यह बताता है कि लोग कैसे और क्यों विश्वास करने लगते हैं कि उन्हें क्या/कैसे व्यवहार करना चाहिए, किन्तु पुनः स्वयं के द्वारा उन विश्वासों के मूल्यांकन में सुयोग्य बनाता है, और इस प्रकार बौद्धिक प्रतिबिम्बन के आदेशों के द्वारा बदलता है। समान तर्क के आधार पर,यदि नैतिक सापेक्षतावाद सत्य है तो नैतिक सुधारवादियों या आलोचकों की स्थापनाएं सामान्य रूप से असंगत विचारी जाती हैं। मान लीजिए, संस्कृतियां जिन नैतिक व्यवहारों की आलोचना रीना करना चाहती है, वे स्वयं उसके अपने हैं। मान लीजिए रीना जिस समाज में रहती है उसमें गुलामी के रिवाज का नैतिक चलन है और रीना इस भयावह विचार को नकारती है। वह विश्वास करती है कि गुलामी नैतिक रूप से अनुचित है। वास्तव में, वह इसे तिरस्कारयोग्य मानती है, जिसका सभी सभ्य समाजों से उन्मूलन किया जाना चाहिए। मान लीजिए रीना किसी से अग्रलिखित दावा करती है, "गुलामी नैतिक रूप से अनुचित है।" यदि नैतिक सापेक्षतावाद सत्य है, तब, प्राथमिक रूप से उसका दावा अनिवार्यतः अनुचित या गलत है, क्योंकि जो भी चाहेगा मुझे प्रदर्शित करके बता सकता है। तथ्यात्मक रूप से गुलामी मेरे समाज के रिवाज के पैमाने से नैतिक रूप से आदेशित है, यह प्रतीत होता है नैतिक सापेक्षतावाद कि रीना का आलोचनात्मक दावा उचित नहीं हो सकता है। ज्यादा से ज्यादा वह यह निर्वचित कर सकती है– नैतिकता से भिन्न किसी आधार पर– कि गुलामी को नैतिक नहीं होना चाहिए। शायद वह विशुद्ध विवेकपूर्ण आधार पर तर्क करे कि हमारी सामूहिक आत्म–रुचि सुझाव देती है कि हमें गुलामी पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए क्योंकि यह क्रमिकतः गम्भीर सामाजिक अस्थिरता की ओर ले जाएगी। या शायद वह तर्क दे सकती है, पूर्णतः आर्थिक आधार पर, कि गुलामी उत्पादन की एक अदक्ष प्रणाली है जिसको खुली, मुक्त–बाजार प्रणाली से विस्थापित कर देना चाहिए ताकि पूर्ववर्ती गुलाम आर्थिक रूप से प्रेरित होकर अर्थव्यवस्था में उत्पाद्य ढंग से सहयोग दे पायें। मेरे समाज में पाये जाने वाली गुलामी प्रथा की आलोचना के लिए ये सभी सम्भावित तर्क हैं। लेकिन इनमें से कोई भी नैतिक तर्क की तरह प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि नैतिक सापेक्षतावाद सत्य है, तो यह प्रतीत होता है कि रीना तथ्य–विषय के रूप में गुलामी को नैतिक रूप से प्रमाणित चलन है इसको बौद्धिकतः नकार नहीं सकती। रीना के पास मेरे सांस्कृतिक चलनों को नैतिक आधार पर आलोचना करने का कोई बौद्धिक अवकाश नहीं है। नैतिक सुधारवादी को बौद्धिक अवकाश प्रदान न कर पाने की असफलता किसी भी नैतिकता के सिद्धान्त में गम्भीर कमी बताता है।

नैतिक सापेक्षतावाद तार्किक रूप से असंगत प्रतीत होता है। इस कथन पर विचार करते हैं, सभी सत्य सापेक्ष हैं। यदि यह कथन वस्तुनिष्ठरूप से सत्य है, तब सापेक्षतावाद असत्य है क्योंकि कम से कम एक वस्तुनिष्ठ सत्य होगा, कि सत्य सापेक्ष है। लेकिन यदि कथन केवल आत्मनिष्ठ रूप से सत्य है, तब जैसाकि हम पहले ही देख चुके हैं, इसका तात्पर्य होगा कि आप सापेक्षतावाद में विश्वास करते हो। इस

प्रकार, यह दावा करने पर कि सत्य सापेक्ष है आप या तो स्वयं को नकारते हो या अपने विश्वास के अनुमोदन में कुछ भी प्रस्तुत न करने के साथ तुच्छ दावा करते हो।

बोध प्रश्न IV

टिप्पणीः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक सापेक्षतावाद को लोकप्रिय बनाने वाले दो कारण कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 सारांश

नैतिक सापेक्षतावाद का तात्पर्य है कि कोई विश्वास, विचार, प्रतिज्ञप्ति, दावा आदि कभी पूर्णतया सत्य या असत्य, शुभ या अशुभ, उचित या अनुचित नहीं होता है। नैतिक सापेक्षतावादियों का मानना है कि विवादित मुद्दे समान रूप से सत्य होते हैं। संक्षेप में, नैतिक सापेक्षतावादी यह नकारते हैं कि उचित या अनुचित के बारे में कोई वस्तुगत सत्य या पैमाना है। नैतिक निर्णय सत्य या असत्य नहीं हैं, क्योंकि नैतिक निर्णय से संवादिता हेतु कोई भी वस्तुगत नैतिक सत्य उपस्थित नहीं है। संक्षेप में, नैतिकता सापेक्ष, आत्मनिष्ठ, और सार्वभौमिकता के बन्धन से मुक्त है। नैतिकता के बारे में असहमतियां किसी टॉफी के स्वाद के बारे में असहमतियों की तरह हैं। और नैतिकता को सापेक्ष कौन बनाता है? प्रायः नैतिकता समूहों या व्यक्तियों के विश्वासों, सम्वेदनाओं, मतों/धारणाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं, रुचियों, वरीयताओं, भावनाओं इत्यादि के अनुसार सापेक्ष विचारी जाती है। नैतिक सापेक्षतावाद को समझने के तीन तरीके हैं– सांस्कृतिक नैतिक सापेक्षतावाद, मानकीय नैतिक सापेक्षतावाद, और अधि–नैतिक सापेक्षतावाद। नैतिक सापेक्षतावाद अपनी जड़ें प्राचीन ग्रीक, प्रोटागोरस में रखता है और हॉब्स, स्पिनोजा, ह्यूम, और नीत्शे के द्वारा आधुनिक समय में पल्लवित हुआ। अधिक क्या कहा जाये, सापेक्षतावाद न तो हमारे सत्य को जानने की असमर्थता से, और न ही सपेक्षतावाद में हमारे विश्वास के उत्साह से समर्थित है। यह दावा कि सभी वस्तुएं सापेक्ष हैं, असंगत या अतार्किक है।

5.6 कुंजी शब्द

आत्मनिष्ठतावाद : वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसके अनुसार हमारी मानसिक क्रिया एकमात्र प्रश्न से परे तथ्य है। नैतिक अभिव्यक्तियों की सत्यता और असत्यता व्यक्तियों की अभिरुचियों/प्रवृत्तियों पर निर्भर करती है।

5.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

फिशर, एन्ड्रू. *मेटा एथिक्सः एन इन्ट्रोडक्शन.* एकुमेन पब्लिशिंग लिमिटेड, 2011.

किर्चिन, सिमोन. *मेटा एथिक्स.* पेलग्रेव मैक्मिलन, 2012.

ल्न्चो, विल्फ्रिड. जे. *दि डायमेन्शन ऑफ एथिक्स.* ब्रोडव्यू प्रेस, 2003.

पॉल के. मोजर एण्ड थॉमस एल. कार्सन (सम्पा.). *मॉरल रिलेटिविज्मः अ रीडर.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001.

मचेन, टिबोर आर. *अ प्राइमर ऑन एथिक्स.* नोर्मन एण्ड लन्दनः ओक्लाहोमा प्रेस, 1997.

गोमन्स, क्रिस. "मॉरल रिलेटिविज्म," स्टेनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी, प्रथम प्रकाशन फरवरी 19, 2004, पुनःसुधार अप्रैल 20, 2015.

एम्रिस, वेस्टकॉट. "मॉरल रिलेटिविज्म," इन्टरनेट एनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी में संकलित.

ड्राइवर, जूलिया. *एथिक्सः दि फण्डामेन्टल्स.* ब्लेकवेल पब्लिशिंग, 2007.

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) नैतिक सापेक्षतावाद का मानना है कि नैतिकता किसी निरपेक्ष पैमाने पर निर्भर नहीं करती है। बल्कि नैतिक सत्य परिस्थिति, संस्कृति, भावना, इत्यादि चरों पर निर्भर करते हैं। इसका तात्पर्य है कि कोई कृत्य उचित है या अनुचित उस समाज के नैतिक रूढियों पर निर्भर करता है जिसमें यह कृत्य होता है। एक ही कृत्य किसी एक समाज में नैतिक रूप से उचित होता है और किसी दूसरे समाज में नैतिक रूप से अनुचित। उदाहरणार्थ, विवाहेतर सम्बन्ध कुछ समाजों में निंदनीय है तो कुछ में स्वीकार्य। नैतिक सापेक्षतावादी इन बातों का समर्थन करते हैं कि– (1) नैतिक निर्णय सत्य या असत्य है और कृत्य उचित या अनुचित, यह केवल किसी विशिष्ट दृष्टि के सापेक्ष होता है। (2) कोई भी दृष्टि वस्तुनिष्ठ रूप से अन्य दृष्टि से उच्च सिद्ध नहीं की जा सकती है। नैतिकता को समान दावों के आधार पर परिभाषित करने के समस्त प्रयास असफल हैं, क्योंकि वे सभी उस आधारवाक्य पर आश्रित हैं कि रक्ष्य दृष्टिकोण से सम्बन्धित है और इस दृष्टिकोण को न मानने वाले लोगों के द्वारा इसका स्वीकृत होना आवश्यक नहीं है।

2) नैतिक सापेक्षतावाद या नीतिपरक सापेक्षतावाद नैतिक निरपेक्षवाद या नैतिक वस्तुनिष्ठवाद से तुलना में अधिक आसानी से समझा जा सकता है। निरपेक्षवाद दावा करता है कि नैतिकता प्राकृतिक नियम, चेतना या किसी अन्य मूलभूत स्रोत में अन्तर्निहित सिद्धान्तों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए– ईसाई निरपेक्षवादी विश्वास करते हैं कि ईश्वर हमारे साझा नैतिकता का अन्तिम स्रोत है, और नैतिकता अपने स्रोत (ईश्वर) की तरह ही अपरिवर्तनीय है। ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है इसका सत्य या उचित होना, किसी भी मानवीय स्वीकरण या अस्वीकरण पर निर्भर नहीं है। नैतिक निरपेक्षवाद वह नैतिक विश्वास है कि कुछ निरपेक्ष पैमाने हैं जिनके आधार पर नैतिक प्रश्नों का मूल्यांकन किया जा सकता है, और कुछ निश्चित कृत्य कृत्य के सन्दर्भ से असम्बद्ध उचित या अनुचित होते हैं। इस प्रकार, कृत्य उसमें संलग्न व्यक्ति–विशेष, समाज, या संस्कृति के विश्वासों और लक्ष्यों से असम्बद्ध रूप में नैतिक या अनैतिक होते हैं।

3) नैतिक सापेक्षतावाद और नैतिक आत्मनिष्ठवाद में बहुत सूक्ष्म अन्तर है। नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक आत्मनिष्ठवाद से अधिक व्यापक है। नैतिक आत्मनिष्ठवाद का मत है कि नैतिक कथन प्रेक्षक की अभिवृत्ति या मनोभाव या रूढियों से सत्य या असत्य बनते हैं या कि कोई नैतिक वाक्य किसी के द्वारा धारित अभिवृत्ति या मनोभाव को अन्तर्निहित करता है। नैतिक सापेक्षतावाद वह विचार कि किसी वस्तु को नैतिक रूप से उचित होने के लिए समाज के द्वारा अनुमोदित होना चाहिए, इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि विभिन्न वस्तुएं विभिन्न समाजों और इतिहास–कालों में लोगों के लिए उचित होती हैं। सापेक्षतावादी के लिए, विचारणीय यह नहीं है कि क्या कोई नैतिक निर्णय अस्तित्ववान है या नहीं, बल्कि यह है कि वे सापेक्षिक रूप से सत्य या असत्य हैं फिर चाहे व्यक्ति–विशेष के या फिर समूह के नैतिक ढांचे के सापेक्ष। नैतिक आत्मनिष्ठवाद का विश्वास है कि व्यक्ति–विशेष अपनी स्वयं की नैतिकता रचते हैंय नैतिकता का अस्तित्व व्यक्ति–विशेष के अनुभवों से किया जा सकता है क्योंकि कोई भी वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं है। कृत्य उचित हैं या अनुचित, शुभ हैं या अशुभ (अच्छे हैं या बुरे) इस सम्बन्ध में लोगों का विश्वास तर्क या संस्थागत नैतिक विश्लेषण की अपेक्षा इस बात पर निर्भर करता है कि लोग कृत्यों के बारे में क्या महसूस करते हैं। नैतिक उक्तियों की सत्यता और असत्यता लोगों की अभिवृत्तियों पर निर्भर करती है। कोई नैतिक आत्मनिष्ठवादी युक्ति प्रस्तुत करेगा कि कथन "रोहित दुष्ट है" रोहित के द्वारा किये गये कार्यों के प्रति तीव्र नापसंदगी को अभिव्यक्त करता है, लेकिन इससे यह अनुसरित नहीं होता है कि रोहित वास्तव में दुष्ट था, सत्य है या असत्य। दोनों पद इस सन्दर्भ में सुसंगत हैं कि नैतिक दावों का सत्य व्यक्ति–विशेषों की अभिवृत्तियों के सापेक्ष है।

बोध प्रश्न II

1) नैतिक सापेक्षतावाद के तीन प्रकार हैं– (1) वर्णनात्मक सापेक्षतावाद या सांस्कृतिक सापेक्षतावाद, (2) मानकीय सापेक्षतावाद या नैतिक आपेक्षिक सापेक्षतावाद तथा (3) अधि–नैतिक सापेक्षतावाद।

2) अधि नैतिक सापेक्षतावाद– यह कथन करता है कि नैतिक निर्णय वस्तुनिष्ठ रूप से सत्य या असत्य नहीं होते हैं और इस प्रकार विभिन्न व्यक्ति–विशेष या समाज संघर्षपूर्ण नैतिक निर्णयों को धारण कर सकते हैं। यद्यपि, यह सोचने और इस तरह कार्य करने की होती है कि हमारे स्वयं के या हमारे समाज या संस्कृति के नैतिक निर्णय रूप से उचित हैं। इस मत के अनुसार नैतिक निर्णय किसी निरपेक्ष सन्दर्भ में नहीं, अपितु केवल विशिष्ट दृष्टियों के सापेक्ष सत्य या असत्य होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी एक संस्कृति के नैतिक मूल्यों को दूसरे अन्य से वरीय मानने का कोई नैतिक वस्तुनिष्ठ आधार नहीं है। समाज अद्वितीय विश्वासों, रूढियों, और प्रथाओं/चलनों के आधार पर अपने नैतिक विकल्पों को बनाते हैं। लोग इस विश्वास के प्रति झुकाव रखते हैं कि 'उचित' नैतिक मूल्य वे हैं जो उनकी अपनी संस्कृति में पाये जाते हैं। वे केवल यह विश्वास नहीं करते कि लोग नैतिक मुद्दों पर असहमत होते हैं, अपितु यह विश्वास करते हैं कि शुभ, अशुभ, उचित और अनुचित पद अंशमात्र भी सार्वभौमिक सत्य–शर्तों को संदर्भित नहीं करते हैं, बल्कि व्यक्ति–विशेष या समूहों की परम्पराओं, चलनों के सापेक्ष होते हैं।

बोध प्रश्न III

1) नीत्शे की नैतिकता–सम्बन्धी युक्ति नैतिक सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के लिए सुदृढ़ आधार स्थापित करती है। उनके लिए, जो उचित या शुभ है वो शक्तिवान पर निर्भर करता है। वह वस्तुनिष्ठ या सार्वभौमिक नैतिकता, जिसे वे रूढ़िगत नैतिकता पद से संदर्भित करते हैं, में विश्वास नहीं करते हैं, इसलिए कई दार्शनिक उनके मत को सापेक्षतावाद बतौर लेते हैं। उनकी प्रसिद्ध घोषणा कि "ईश्वर मर गया है" अन्तर्निहित करती है कि नैतिक दावों का अगोचर या वस्तुनिष्ठ प्रमाणीकरण अब और विश्वसनीय नहीं है। नीत्शे के अनुसार, जब कोई आरोपित नियमों और विनियमों का पालन करता है वह स्वयं के प्रति अजनबी रहता है। नियमों और विनियमों का यह आरोपण पूर्व में आधिभौतिक सत्ता (ईश्वर) के नाम पर धर्मों के द्वारा किया गया। अपनी तर्कबुद्धि के प्रयोग के बजाय, हम श्रद्धा के द्वारा धर्म का अनुसरण करते हैं। धर्म नियम और विनियमों का आरोपण कर और हमें इनके अनुसरण के लिए तैयार कर हमारी वास्तविक अस्मिता को छिपा देता है। हम जिसे हमसे "शुभ", और "अशुभ" कह दिया जाता है उसे केवल स्वीकारते हैं और उसका पालन करते हैं। पालन करने के प्रक्रिया में हमारे जीवन में स्व–प्रतिबिम्बन और स्व–रचनात्मक सामर्थ्य का अभाव होता है। नीत्शे के अनुसार, "जब यह हम तक आता है, हम 'ज्ञाता' नहीं होते हैं।" उनका विश्वास था कि शक्तिशाली व्यक्ति–समूह के द्वारा बनाए हुए नैतिक नियमों के प्रति क्रिया के बजाय, नैतिकता सक्रिय रूप से, उसको हम कौन हैं और व्यक्ति–विशेष के रूप में हम जो अच्छे–बुरे हैं, के सापेक्ष बनाते हुए संरचित होनी चाहिए।

बोध प्रश्न IV

1) नैतिक सापेक्षतावाद निम्नलिखित दो कारणों से लोकप्रिय दृष्टिकोण होता गया–

   अ) धर्म की अवनति– धर्म इस सम्भावना को प्रस्तुत करते प्रतीत होता है कि नैतिकता हम पर निर्भर नहीं है। धर्म से प्रस्थान बिन्दु के रूप में यह प्रतीत होता है कि वस्तुनिष्ठ नैतिकता की सम्भावना पर संशय की कुछ मात्रा आ गयी थी। नैतिक सापेक्षतावादी कहेंगे कि व्यक्ति–विशेष या अपने समाज को देखने की अपेक्षा कोई भी अच्छा स्थान नहीं है।

   आ) सांस्कृतिक विविधता का अवलोकन– हममें से अधिकतर सचेत हैं कि संसार अनेक विभिन्न संस्कृतियों से बना है और इनमें से कुछ संस्कृतियां हमारे व्यवहारों से अधिक भिन्न व्यवहारों में संलग्न हैं। इन सब विविधताओं को देते हुए, कोई भी एकमात्र वस्तुनिष्ठ नैतिकता नहीं है, क्योंकि नैतिकता संस्कृतियों में बदलती है। महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्नों पर विभिन्न मतों की व्यापकता वह निर्विवादित तथ्य है जो नैतिक सापेक्षतावाद के पक्ष में दिया जाने वाला अधिक सामान्य उल्लिखित तर्क है। कुछ समाज गुलामी को वस्तुओं की प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत मानते हैं, तो वहीं कुछ नैतिक तिरस्कार के रूप में निंदनीय। अनेक व्यक्ति–विशेष गर्भपात हत्या की तरह देखते हैं, जबकि अन्य अपनी पुनरुत्पाद्य प्रक्रिया पर आत्म–नियंत्रण के स्त्री–अधिकार पर अस्वीकार्य अतिक्रमण के रूप में गर्भपात रोकने के प्रयासों की निंदा करते हैं। इस प्रकार के अनेक मत–भेदों के प्रकाश में एक वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य पर विश्वास करना तार्किक नहीं है। यदि वस्तुनिष्ठ पैमाने हों तो नैतिक मुद्दों पर सहमति का अच्छा समझौता नहीं होगा जैसाकि कोई वास्तव में खोज पाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY